तेलुगु वाङ्मय

विविध विधाएँ

बालशौरि रेड्डी

प्रथम संस्करण : १९९१

मूल्य : रु० ५०/-

प्रकाशक : हिन्दुस्तनी एकेडेमी, इलाहाबाद

मुद्रक : रामायण प्रेस,
७३९-पुराना कटरा (पिंक मार्केट), इलाहाबाद

प्रकाशकीय

अखण्ड भारत की अवधारणा—भाषागत वैविध्य के होते हुए भी सर्वमान्य है। स्वतंत्र भारत के साहित्यिक विकास में यहाँ की भाषाओं तथा उपभाषाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश का बहुसंख्यक समाज हिन्दीतर समृद्ध भाषाओं के साहित्य से भी प्राय: अपरिचित है। तेलुगु भाषा आन्ध्र प्रदेश की भाषा है और भाषाविज्ञान के अनुसार द्रविड़-परिवार की भाषा मानी जाती है, किन्तु वह संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से पर्याप्त प्रभावित है। जहाँ भारतीय भाषा एवं साहित्य का वैविध्य भी समृद्धि का बोध कराता है, वहीं लिपि का अन्तर अन्तराल उत्पन्न करता है जिसको पार करना बहुधा दुष्कर हो जाता है। इसे दूर करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं और ऐसी मानसिकता भी बन रही है कि व्यवधान मिट जाय। सोलह भाषाओं को एक ही देवनागरी लिपि में कम्प्यूटर के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है और उनके परस्पर अनुवाद भी किये जा सकते हैं। कार्य-रूप में यह उपलब्धि क्रान्तिकारी परिणाम देगी—ऐसा विश्वास है। अनेक संस्थानों और अकादमियों द्वारा अनुवाद का कार्य किया भी जा रहा है। एक भाषा में दूसरी भाषा के साहित्य की पहचान कराने की चेष्टा निश्चय ही स्वागत-योग्य है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के वृहत्तर उद्देश्य को दृष्टि में रख कर दो योजनाएँ स्वत: स्वीकार की हैं। एक, अन्य भाषाभाषी विद्वानों द्वारा हिन्दी में महत्त्वपूर्ण एवं पठनीय सामग्री प्रस्तुत करना; और दूसरा, द्विभाषी अनुवाद-प्रकाशन। दूसरी योजना के अन्तर्गत कुछेक पुस्तकें प्रकाशित भी हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'तेलुगु-वाङ्मय : विविध विधाएँ' पहली योजना के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके लेखक दक्षिण भारत में ही नहीं, उत्तर भारत में भी सुप्रसिद्ध और सम्मानित रहे हैं। सम्प्रति वे भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता के निदेशक पद पर समासीन हैं। इस पर डॉ० प्रभाकर माचवे और पाण्डुरंग राव उनसे पूर्व दायित्व सँभाल चुके थे।

इस पुस्तक का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को तेलुगु साहित्य की गतिविधि से अवगत कराना है । पुस्तक में चौदह लेख संगृहीत हैं जिनमें से कई लेख तेलुगु भाषा और साहित्य के महत्त्वपूर्ण पक्षों को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करते हैं । सारे लेख एकसाथ नहीं लिखे गये हैं । उनके प्रभाव और अभाव दोनों को संतुलित दृष्टि से लेना चाहिए ।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक विद्वानों के बीच समादृत होगी ।

जगदीश गुप्त
सचिव

भूमिका

किसी भी राष्ट्र अथवा देश के सांस्कृतिक विकास में उस राष्ट्र या देश की भाषा, वाङ्मय, धर्म, दर्शन तथा ललित कलाएँ अपनी अहं भूमिका रखती हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत भाषा माध्यम रही है।

भारत अनादि काल से ही एक अखण्ड भू-भाग के रूप में विद्यमान रहा है। हालाँकि इस भू-खण्ड में विविध प्रकार की भाषाएँ, सभ्यताएँ विभिन्न क्षेत्रों में पल्लवित, पुष्पित एवं पनपती रही हैं और परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में से विविधताएँ—अनेकता में एकता तथा एकता में अनेकता का आदर्श प्रस्तुत करती रही हैं। हमारी मूल चिंतनधारा इतनी समान रही है कि परिणामस्वरूप विविध क्षेत्रों के चिंतकों, मनीषियों, गायकों तथा साहित्यकारों का स्वर एक रहा है; साथ ही हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन के आदर्श भी समान रहे हैं। यही कारण है कि वे ही आदर्श हमारे साहित्य, कला तथा जीवन-शैली में समान रूप से प्रतिबिंबित होते रहे हैं। इन्हीं तत्त्वों तथा आदर्शों को आत्मसात् करके हमारे देश के कवि, गायक तथा कलाकार साधनारत रहे हैं। इन विविध धाराओं के मध्य अंतर्वाहिनी के रूप में हमारी जो सांस्कृतिक स्रोतस्विनी प्रवहित रही है, वही हमारी एकता एवं अखण्डता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हमारी संस्कृति सदा समन्वयात्मक रही है, इस कारण इसमें समस्त प्रदेशों की विशेषताएँ स्वाभाविक रूप से समाविष्ट होती गई हैं। परिणामस्वरूप हमारी संस्कृति अत्यन्त व्यापक, गहन तथा विविधताओं से पूर्ण हो परिपुष्ट बनती रही है। इसके उन्नयन में आन्ध्र का योगदान भी अपनी अलग पहचान रखता है।

इसी क्रम में भारत की समस्त भारतीय भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्र में विकसित एवं समृद्ध होती रही हैं। परन्तु भारतीय चिंतक, मनीषी, समाज-सुधारक, भाषाविद् एवं राजनायिकों ने यह अनुभव किया कि संपूर्ण भारतीय सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए एक आधुनिक भारतीय भाषा को माध्यम के रूप में विकसित करना आवश्यक है। परिणामस्वरूप हिन्दी राष्ट्रभाषा/संपर्क-भाषा/राजभाषा के रूप में स्वीकार की गई।

स्वाधीनता के उपरांत भारतीय भाषाओं तथा हिन्दी के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य पर विविध प्रकार की रचनाएँ प्रकाश में आने लगीं। इसी परंपरा की यह भी एक कड़ी है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में तेलुगु भी एक सक्षम एवं समृद्ध भाषा है। ग्यारहवीं शती में जब तेलुगु का प्रथम महाकाव्य 'महाभारत' का सूत्रपात हुआ, तब से निरंतर तेलुगु भाषा विकसित एवं परिपुष्ट होती रही। तेलुगु सात करोड़ जनता की मातृभाषा है और यह संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। लगभग साठ फीसदी तत्सम शब्दों से पूर्ण यह परिनिष्ठ भाषा अपने उत्तम काव्य-ग्रन्थों के साथ विविध विधाओं की कृतियों से समलंकृत है। तेलुगु वाङ्मय की विविध विधाओं में यक्षगान, शतक साहित्य, अवधान कविता, द्व्यर्थि एवं त्र्यर्थि काव्य अपना अलग वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। इस ग्रन्थ में मैं अवधान कविता तथा द्व्यर्थि एवं त्र्यर्थि काव्य-सम्बन्धी लेख नहीं दे पाया। अगले संस्करण में अवश्य सम्मिलित करने का प्रयास करूँगा।

इस ग्रन्थ में कुल चौदह निबंध हैं। प्रारंभ के दो लेखों में मैंने तेलुगु साहित्य के क्रमिक विकास का परिचय दिया, शेष निबंधों में तेलुगु वाङ्मय के विविध परिदृश्यों का पर्यावलोकन। मैं मानता हूँ कि कुछ निबंधों में मैं अत्याधुनिक गतिविधियों तथा साहित्यकारों का विपुल परिचय नहीं दे पाया। एक तो ग्रन्थ के कलेवर के बढ़ने की आशंका थी और दूसरी बात—मैंने अपने तेलुगु साहित्य का इतिहास[१] तथा तेलुगु साहित्य के निर्माता[२] में विशद चर्चा की है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ के 'स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य' निबंध में संक्षेप में ही सही, पूर्ण विहगावलोकन किया है।

इस ग्रन्थ में मैंने तेलुगु वाङ्मय के विभिन्न परिदृश्यों के मार्गदर्शक सूत्रों का परिचय देने का अवश्य प्रयास किया है, इसकी गुणवत्ता तथा उपादेयता का निर्णय विज्ञ पाठक एवं सुधी समीक्षक ही कर सकेंगे।

मेरे कतिपय निबंध एवं तेलुगु साहित्य का इतिहास पढ़कर स्वर्गीय श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा ने तेलुगु साहित्य के विविध परिदृश्यों पर कुछ चुने हुए निबंध भेजने का आग्रह किया, तदुपरांत आदरणीय डॉ० जगदीश गुप्त जी ने बार-बार स्मरण दिलाकर इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का प्रयास किया और बंधुवर डॉ० रामजी पांडेय ने ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रगति एवं मुद्रण में विशेष रुचि लेकर इस ग्रन्थ को आकर्षक बनाने का सफल प्रयत्न किया है। अतः मैं हिन्दुस्तानी एकेडेमी के इस त्रित्रय के प्रति अत्यंत आभारी हूँ।

—बालशौरि रेड्डी

निदेशक
भारतीय भाषा परिषद्,
३६ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता—७०००१७

---

१. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
२. साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

विषय-सूची

१

तेलुगु भाषा और साहित्य

तेलुगु भाषा के आदि महाकवि नन्नय भट्ट ने "नन्दपूडि" शिलालेख में अपने सम्बन्ध में लिखा है—"आन्ध्र कवित्व विशारदुंडु" अर्थात् मैं आन्ध्र "तेलुगु" भाषा की कविता का विशारद हूँ। इससे हमें विदित होता है कि तेलुगु भाषा प्राचीन समय में आन्ध्र नाम से भी व्यवहृत हुई है। आन्ध्र शब्द पहले देशपरक में, तत्पश्चात् जाति तथा भाषा के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आन्ध्रवासियों का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मणों में (ऐतरेय ब्राह्मण-६, अध्याय-३, खण्ड-१८) महाभारत के सभा पर्व में, ब्रह्म, मत्स्य, वायु इत्यादि पुराणों में ही नहीं अपितु महाभारत, रामायण आदि महाकाव्यों में भी हुआ है। वही आन्ध्र शब्द कालांतर में भाषा के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आन्ध्र भाषा का दूसरा नाम तेलुगु है।

तेलुगु और तेनुगु :

ब्रह्माण्ड पुराण के वर्णनों द्वारा हमें यह विदित होता है कि आन्ध्र देश के सुप्रसिद्ध शव तीर्थ श्रीशैल, कलाहस्ती तथा द्राक्षाराम के बीच में स्थित भूभाग त्रिलिंग देश है। कुछ विद्वानों का विचार है कि यही त्रिलिंग शब्द तेलुगु के रूप में परिवर्तित हो गया है। प्राचीन काल में गंगा नदी के तट से लेकर उड़ीसा के कटक तक का भूभाग उत्तर कलिंग (उत्कल) नाम से व्यवहृत होता था। कटक से लेकर गंजाम जिले के मलय पर्वतों की श्रेणी पर्यंत मध्य कलिंग तथा मलय पर्वतों के दक्षिण भाग से लेकर गोदावरी तक का प्रदेश दक्षिण कलिंग नाम से पुकारा जाता था। ये ही तीन कलिंग त्रिकलिंग कहलाये। कालांतर में त्रिलिंगा, त्रिलिंग शब्दों में परिवर्तित होते हुए तेलुगु बना।

त्रिलिंग शब्द के सम्बन्ध में एक और सिद्धान्त निकाला गया है कि गोदावरी के उत्तर में महेन्द्राचल तक का प्रदेश आन्ध्र था। इस देश का नाम कलिंग था। यह प्रदेश उत्कलिंग, मधुकलिंग और कलिंग नामक भागों में बँटा हुआ था ; अतः वह देश त्रिकलिंग कहलाया।

यूनान के भूगोलशास्त्री टालेमी ने ई० सन् १५० में इस प्रदेश के लिए 'ट्रिलिंगान' शब्द का प्रयोग किया है। इसी का परिवर्तित रूप तेलंगाना है। गंजाम जिले के पर्लाकिमिडि तालुके के मुखलिंगेश्वर मन्दिर में प्राप्त शिलालेख में लिखा है—

महाराजाधिराज त्रिकलिंगाधिपतिः
श्रीमदनंत वर्म महाराज श्चोड गंगदेवः
आकल्पं गुणधाम सोमल महादेवी मनोमानसे
हंसीयात्रिकलिंग मंडलापतेः श्रीगंगचूडामणेः

उपर्युक्त त्रिकलिंग शब्द कालांतर में विभिन्न रूपों को प्राप्त करते हुए 'त्रिअलिंग', 'तेलुगु' और 'तेनुगु' के रूप में परिवर्तित हो गया है। विद्यानाथ ने (ई० सं० १३००) अपने 'प्रतापरुद्रीय' में अपने आश्रयदाता प्रतापरुद्रदेव का सम्बोधन "त्रिलिंगदेश परमेश्वर" नाम से किया है।

तेलुगु के प्रसिद्ध वैयाकरण अप्पकवि ने अपने 'अप्पकवीयमु' नामक ग्रन्थ में तनुगु और तेलुगु शब्दों की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी है—

श्री क्षितिधर कालेश द्राक्षारामंबुलनग दनरारेडु।
त्रिक्षेत्रंबुल लिंगमु लीक्षिप संज्ञनेत्रिककेक्कुन ॥

अर्थात् श्रीशैल, कालहस्ती और द्राक्षाराम नामक तीन प्रसिद्ध शवतीर्थों के कारण इस प्रदेश का नाम त्रिलिंग पड़ा है :

तत् त्रिलिंग निवासंबु तरुकतन
नांध्र देशंबुधात्रिलिंगारूढमय्ये
देलुगुगुचुद्भवमु दानिवलन बोडये
वेनुक गोंदरू दानिके तेलुगु तड्र।

उन तीन शवतीर्थों के कारण आन्ध्र देश 'त्रिकलिंग भूमि' कहलाया। उसी शब्द का तद्भव तेलुगु बना, वही 'तेनुगु' नाम से भी व्यवहृत हुआ।

पाश्चात्य काम्पबेल महोदय ने तेलुगु शब्द का मूलरूप त्रिलिंग माना है। डॉ० ग्रियर्सन ने तेलुगु और तेनुगु शब्दों पर विचार करते हुए यह सिद्धान्तीकरण किया है कि तेलुगु शब्द से ही तेनुगु की उत्पत्ति हुई है।

तेलुगु भाषा की प्रशस्ति :

तेलुगु स्वरांत भाषा है। इसमें स्वरप्रधान संगीत तथा वर्णप्रधान साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। यही कारण है कि इस भाषा की देशी तथा विदेशी विद्वानों ने भी बड़ी प्रस्तुति की है। विजयनगर साम्राज्य के अधिपति कृष्णदेव राय ने, जो संस्कृत तथा देशी भाषाओं के उद्भट विद्वान थे, तेलुगु की बड़ी प्रशंसा की है—

तेलुगदेलछन्न देशंबुतेलुगेनु
तेलुगु वल्लभुंड दलुगोकोंड
दल्लभाषलंदु येरुगवे माटाडि
देशभाषलंदु देलुगु लेस्स ।

अर्थात् मुझसे यदि कोई यह पूछे कि तेलुगु ही श्रेष्ठ क्यों है, मैं निस्संकोच उत्तर दूँगा कि यह तेलुगु देश है, मैं तेलुगु सम्राट हूँ, तेलुगु भाषा-भाषी हूँ। यही नहीं, समस्त देशी भाषाओं में वार्त्तालाप करके देखियेगा तो स्वयं ज्ञात होगा कि तेलुगु ही सर्वोकृष्ट भाषा है।

तेलुगु भाषा के सम्बन्ध में हेनरी मारिस का कथन है—"तेलुगु अत्यन्त मधुर भाषा है। द्राविड़ भाषाओं में तेलुगु-जैसी मधुर भाषा कोई दूसरी नहीं है। तेलुगु की प्राच्य को इटालियन भाषा कहना समुचित लगता है। तमिल इससे भी समृद्ध भाषा है, इसका साहित्य प्राचीन भी है, लेकिन स्वर-माधुर्य तथा प्रांजलता की दृष्टि से तेलुगु भाषा अनुपम है।"

बी० एस० हलडैन महोदय ने १९५८, अप्रैल २७ के 'हिन्दू' में तेलुगु भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार संभव है, किन्तु विदेशी शब्दों का नहीं। मैं समझता हूँ कि ऐसे शब्दों की स्वीकृति के कारण ही संभवतः भारत की समस्त भाषाओं में तेलुगु ही एक ऐसी भाषा है जो अन्य भाषाओं के शब्दों को बड़ी सरलता से आत्मसात् कर सकती है। इसलिए विज्ञान, चिकित्सा, इन्जीनियरी आदि शास्त्रों के शिक्षण में इसे हिन्दी के मुकाबले में लाया जा सकता है।"

तेलुगु भाषा शब्दावली की दृष्टि से आर्य भाषाओं के निकट है तो व्याकरण की दृष्टि से द्राविड़ भाषाओं के निकट है। उत्तर और दक्षिण के मध्य में स्थित होने के कारण तेलुगु भाषा में आर्य और द्राविड़ भाषाओं की समस्त विशेषताओं का अच्छा समन्वय हुआ है। प्राचीन काल में बहुत समय तक आन्ध्र में प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं का आधिपत्य रहा है। यही कारण है कि तेलुगु भाषा में साहित्य-रचना अत्यन्त विलंब के साथ हुई है। उपलब्ध तेलुगु साहित्य के आधार पर हम संपूर्ण तेलुगु वाङ्मय को छः युगों में बाँट सकते हैं जो निम्नलिखित प्रकार हैं :—

१. अज्ञात युग ई० पू० से ई० सन् १००० वर्ष तक
२. भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग ई० सन् १००० से १३५० तक
३. संधि युग अथवा श्रीनाथ युग १३५० से १५०० तक
४. प्रबन्ध युग या रायल युग १५०० से १७०० तक
५. अर्वाचीन युग या संक्रांति युग १७०० से १८५० तक
६. आधुनिक युग १८५१ से आज तक।

अज्ञात युग :

ईसवी पूर्व आन्ध्र देश पर सातवाहनों ने राज्य किया था। सातवाहन राजा आन्ध्र थे। किन्तु उन राजाओं के राज्य में आन्ध्र के साथ मैसूर तथा महाराष्ट्र के भी कतिपय भूभाग सम्मिलित थे ; अतः उन नरेशों ने अपनी शासकीय भाषा प्राकृत स्वीकार की। यही कारण है कि तेलुगु भाषा को उस युग में राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ। सातवाहन ने प्राकृत में गाथा सप्तशती की रचना की तो उनके दरबारी कवि गुणाढ्य ने पैशाची में बृहत्कथा का प्रणयन किया। उन दिनों में तेलुगु का व्यवहार केवल घरों में होता था। यत्र-तत्र तेलुगु काव्य-ग्रन्थों का सृजन हुआ भी तो धार्मिक विद्वेष के कारण वे सब ग्रन्थ या तो जला दिये गये अथवा नष्ट कर दिये गये थे। हाँ, सातवीं एवं आठवीं शती के जो अनेक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं, उनसे विदित होता है कि उस समय पद्य-गद्य तथा चंपू शैली में भी रचनाएँ हो रही थीं। उन रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होगा कि तेलुगु भाषा विकास के पथ पर अग्रसर हो रही थी। इनके अतिरिक्त उस काल में अनेक प्रकार के गीत प्रचलित थे, जिनका उल्लेख पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने (ई० सन् १९५८-१३२३) अपने काव्य "पंडिताराध्य चरित्र" के 'वाद प्रकरण', पृष्ठ' ५१३ में बताया है—

पदमुलु दुम्मेद पदमुलु प्रभात
पदमुलु बर्वत पदमुलानन्द
पदमुलु, शकर पदमुलु, निवालि
पदमुलु, वालेशु पदमुलु, गोब्बि
पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, संज
वर्णन, मरि गणवर्णन पदमुलु ॥

अर्थात् गीत—भ्रमरगीत, प्रभात गीत, पर्वत गीत, आनन्द गीत, आरती गीत, शंकर गीत, ज्योत्स्ना गीत, संध्या गीत, गणवर्णन गीत इत्यादि प्रचलित थे। इनके अतिरिक्त कठपुतली के गीत, नौका गीत, ढेंकली गीत, वीर गीत आदि लोकगीत तथा कुशलव कथा, ऊर्मिला देवी की निद्रा, लक्ष्मण मूर्च्छा, धर्मांगद चरित्र इत्यादि लोक-कथाएँ भी जनता के ज्ञानबर्द्धन और मनोरंजन के साधन बनी थीं।

पद्मकवि कृत 'जिनेन्द्र पुराण' इस युग की उपलब्ध कृति है। अन्य काव्य-ग्रन्थ अज्ञात ही रह गये, प्रकाश में नहीं आये। यही कारण है कि तेलुगु साहित्य के इतिहासकारों ने इस युग का नामकरण 'अज्ञात युग' किया है।

भाषांतरीकरण युग या कवित्रय युग (सन् १००१-१३५०) :

दसवीं शती तक पहुँचते-पहुँचते आन्ध्र में जैन तथा बौद्ध धर्मों का पतन होने लगा था। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार का संकल्प दृढ़तर होने लगा था। वैदिक धर्म के प्रतिपादन में पुराणों की प्रमुखता थी, किन्तु साधारण जनता तथा स्त्रियों की अभिरुचि पुराणों की अपेक्षा महाभारत के प्रति अधिक थी। लोगों में यह विश्वास था कि महाभारत के श्रवण से सौ गायों के दान तथा अनेक विप्रों को नाना प्रकार की वस्तुओं के दान का फल प्राप्त होता है; अतः अपने अवकाश के क्षणों में लोग महाभारत का श्रवण किया करते थे। वैदिक धर्म का पुनरुद्धार पूर्वी चालुक्य वंशी राजाओं के समय कुमारिलभट्ट ने किया था। वैदिक धर्म के सिद्धान्त संक्षेप में यों हैं—१. वेद अपौरुषेय हैं, इसलिए प्रामाणिक हैं। २. वेदों द्वारा प्रतिपादित यज्ञ-यागादि के आचरण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ३. उपनिषदों का श्रवण मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग-दर्शक है। ४. चतुर्विध वर्ण एवं आश्रम मानव-समाज के आचार-धर्म-सम्बन्धी नियम हैं तथा ५. ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर क्रमशः इस जगत की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणभूत हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का प्रभाव राजा और प्रजा पर ऐसा पड़ा कि प्रत्येक मांगलिक कार्य के अवसर पर पुराणों का श्रवण करना तथा महाभारत की प्रतियाँ लिखवा कर बाँटना एक परिपाटी-सी हो गयी। किन्तु कठिनाई यह थी कि पुराण और महाभारत संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध थे; सर्वसाधारण प्रजा उनका पूर्ण लाभ उठा नहीं सकती थी। यदि उपर्युक्त ग्रन्थ देशी भाषा तेलुगु में होते तो लोग स्वयं पढ़ कर उनका आनन्द उठाते। इसी अभिप्राय से प्रेरित होकर सर्वप्रथम बौद्धाचारों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का देशी भाषाओं में रूपांतर कराया और स्वयं भी उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना देशी भाषाओं में की। इस भाषांतरीकरण ने जनता के हृदयों को अधिक आकर्षित किया और धर्म के प्रचार में यह कार्य विशेष सहायक सिद्ध हुआ। ऐसी स्थिति में वैदिक धर्म के 'पुनरुत्थान' के हेतु 'पंचमवेद' नाम से विख्यात महाभारत के भाषांतरीकरण की आवश्यकता का अनुभव चालुक्य नरेश राजराज नरेन्द्र ने किया। उन्होंने अपने दरबारी कवि एवं राजपुरोहित नन्नय भट्ट को आदेश दिया कि व्यासकृत महाभारत का तेलुगु में अनुवाद करें। नन्नय ने अनुवाद का कार्य प्रारंभ किया। आदि पर्व और सभा पर्वों का अनुवाद समाप्त करके वन पर्व का अनुवाद कर ही रहे थे कि उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। यद्यपि नन्नय ने अनुवाद किया, तथापि उनका ग्रन्थ मौलिकता को लिये हुए हैं। नन्नय की शैली तत्सम प्रधान है। उसमें कोमलता, सरसता एवं माधुर्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनकी कविता सागर की भाँति अगम, गंभीर तथा

अर्थपूरक है। उनकी शैलीगत गंभीरता ने वर्ण्यविषय और पात्रों के चित्रण में चेतना, तेज एवं प्राण-प्रतिष्ठा की है। नन्नय के काव्य में यत्र-तत्र जो मौलिक उद्भावनाएँ मिलती हैं, वे अत्यन्त हृदयग्राही तथा औचित्य के पोषण में समर्थ हैं। मुख्यत: सौगंधिकाहरण के प्रसंग में हनुमान और भीमसेन का संवाद, बकासुर-वध के वृत्तांत में ब्राह्मण और ब्राह्मणी का वार्त्तालाप, रूरु और प्रमद्वरा वृतांत, उदन्त की कहानी, शकुन्तला की गाथा, नलोपाख्यान, ययाति वृत्तान्त आदि बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। अर्जुन की तीर्थयात्रा के प्रसंग में नन्नय ने आन्ध्र के बेंगी प्रदेश का अति सजीव एवं मनोरम चित्र अंकित किया है। उनकी वैयक्तिक विलक्षणता और सरस अभिरुचियों का प्रभाव स्पष्ट रूप में उनकी कविता में परिलक्षित होता है। इन विशेषताओं के साथ वैदिक धर्म का उन्होंने अद्भुत प्रतिपादन किया है।

नन्नय महाकवि ही नहीं थे अपितु वैयाकरणी भी थे। उन्होंने 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' नाम से एक तेलुगु प्रथम व्याकरण ग्रन्थ संस्कृत भाषा में प्रस्तुत किया है। तेलुगु भाषा पर अनुशासन करके वे वागानुशासक (वाणी पर अनुशासन करने वाले) के रूप में विख्यात हुए हैं।

नन्नय के दो शताब्दियों के पश्चात् महाकवि तिकन्ना ने वन पर्व के शेष भाग को अधूरा ही छोड़ शेष पर्वों का अनुवाद पूरा किया। ये चोड़वंशी राजा मनुमसिद्धि के दरबारी कवि एवं महामंत्री थे। काव्य-रचना में तिकन्ना ने अपने समय तक प्रचलित पुराण एवं प्रबंध काव्यों के संप्रदायों का समन्वय करके नवीन रीति का प्रादुर्भाव किया। साथ ही दृश्य काव्य की शैली में वार्त्तालाप तदनुकूल चरित्र-चित्रण भी प्रस्तुत किया है। ये संस्कृत और तेलुगु के प्रकांड पण्डित थे ही, साथ ही राजनीति और अर्थशास्त्र के पारंगत भी थे। तिकन्ना ने अपनी कविता का उद्देश्य यों बताया है—पुष्पों की पंखुड़ियों में गन्ध देनेवाले पराग की भाँति अर्थपूर्ण सुन्दर शब्दों से हार गूँथ, रस-भरित भावों को प्रकट करना चाहिए। मुहावरेदार शैली में बाधा डालनेवाले तत्सम शब्दों का प्रयोग न हो और छोटे-छोटे शब्दों में मनोहर शैली में कविता करनी चाहिए।

तिकन्ना ने मूल काव्य को कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत करके स्वतंत्रता का निर्वाह किया है। जैसे यदि भगवद्गीता को संक्षिप्त किया तो विराट पर्व का विस्तार किया। कृष्ण का दूत कार्य, द्रौपदी और कीचक का प्रसंग बहुत ही रमणीय है। कथा-संदर्भ के अनुरूप रसपरिपाक की दृष्टि से पात्रों में भावोद्रेक की अभिव्यक्ति कराने में तिकन्ना को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। भाषा-शैली काव्य के लक्षणों के निर्वाह में ये अनुपम हैं। अत: ये तेलुगु साहित्य-रूपी आकाश के सूर्य माने जाते हैं।

तिकन्ना की अन्य कृतियों में निर्वचनोत्तर रामायण उल्लेखनीय है। तिकन्ना के पश्चात् बरप्रिगड़ा ने वन पर्व का शेषांश पूरा किया। इस प्रकार तीन कवियों द्वारा इस महाकाव्य का प्रणयन समाप्त हुआ। ये तीनों कवि 'कवित्रय' नाम से विख्यात हैं। यह महाभारत आन्ध्र में ऐसा लोकप्रिय हुआ है कि इसके पीछे एक कहावत ही चल पड़ी है—"विन्टे महाभारतम् विनालि, तिंटे गारेलु तिनालि"। अर्थात् सुनना है तो महाभारत ही सुने, खाना हो तो बड़े ही खावें।

इस युग के अन्य कवियों में वेमुलवाड़ भीम कवि, नन्नेचोड़ देव, मंत्री भास्कर, गोनबुद्धारेड्डी, नाचन सोम आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। भास्कर रामायण और रंगनाथ रामायण इसी युग की देन हैं। इन दोनों रामायणों में वाल्मीकि रामायण से भिन्न अनेक ऐसे वृत्तांत और प्रसंग वर्णित हैं जो काव्य के औचित्य के पोषण में तथा रमणीयता लाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त अथर्वणाचार्य केतना, विन्नकोट पेद्दना आदि रीति शास्त्रकार भी हुए, जिन्होंने क्रमशः अथर्वण छन्द, आन्ध्र भाषा-भूषणमु, काव्यालंकार चूड़ामणि आदि उल्लेखनीय हैं।

इस युग के प्रायः सभी पुराणों का तेलुगु में काव्यानुवाद हुआ है। मारन कवि ने मार्कण्डेय पुराण लिखा तो मडिकि सिगना ने पद्म पुराण, अन्य कवियों ने नारसिंह पुराण, वराह पुराण, गरुड़ पुराण, विष्णु पुराण, लिंग पुराण, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्योत्तर पुराण आदि का स्वतंत्रानुवाद किया है। उपर्युक्त कारणों से यह युग पुराण युग भी कहलाता है। पुराण और रीति ग्रन्थों के अतिरिक्त पावुलूरि मल्लना का गणितशास्त्र, केतना कृत विज्ञानेश्वरीय (धर्म-शास्त्र), बद्देना कृत नीति-शास्त्र, गणपाराध्य कृत स्वर-शास्त्र (संगीतशास्त्र), अप्पन मंत्री द्वारा विरचित वैद्य-शास्त्र भी गणनीय हैं।

नन्नेचोड़ ने 'कुमार संभव' नामक प्रबन्ध काव्य की सृष्टि करके शैव वाङ्मय की रचना का श्रीगणेश किया, तदुपरांत मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य पाल्कुरिकि सोमनाथ आदि ने शैव साहित्य को समृद्ध किया। सोमनाथ ने वीर-शैव मत को वैदिक मत के अनुरूप बनाने के निमित्त अथक परिश्रम किया और उस संप्रदाय के अनुसार श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, काव्य, स्तुति इत्यादि की रचना की। वे ही चतुर्वेद सार, अनुभव सार, रुद्र भाष्य, बसव पुराण, पंडिताराध्य चरित्र, वृषाधिप शतक इत्यादि हैं। वीरशैव धर्म में काव्यात्मक प्राण-प्रतिष्ठा करने का श्रेय सोमनाथ को प्राप्त है। शतक साहित्य का सृजन भी इस युग में प्रारम्भ हुआ जो भविष्य में जाकर खूब पल्लवित एवं पुष्पित हुआ।

संधि युग अथवा श्रीनाथ युग :

इस युग में भाषांतरीकरण युग की प्रवृत्तियों के साथ परवर्ती युग की काव्यगत विशेषताओं का समन्वय पाया जाता है। दोनों युगों की प्रवृत्तियों का संधि-स्थल होने के कारण इस युग का नामकरण 'सन्धि युग' किया गया है। इस युग का प्रतिनिधित्व श्रीनाथ ने किया था। श्रीनाथ ने जो परम्परा चलायी, वह बहुत समय तक अविच्छिन्न रूप में चलती रही। उस युग का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करने के कारण युग का नामकरण 'श्रीनाथ युग' किया गया है। यों तो इस युग की पृष्ठभूमि कवित्रय युग में तैयार हो गयी थी, नन्नय द्वारा प्रवर्तित भाषांतरीकरण पद्धति, तिकन्ना द्वारा चालित प्रबन्ध रीति, नायन सोम का नवीन गुण-प्रदर्शन, परवर्ती प्रबन्ध युग की काव्यात्मक शैलियों का समावेश भी इस युग में हो गया।

यों तो इस युग के प्रतिभासंपन्न महाकवियों में बम्मेर, पोतना और श्रीनाथ के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे प्रतिभाशाली कवि हुए हैं जिन लोगों ने अपनी अनुपम कृतियों द्वारा तेलुगु काव्य साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। इस युग की उल्लेखनीय कृतियों में मडिकि सिंगना कृत 'वसिष्ठपुराण' और 'भागवत का दशम स्कन्ध', जक्कय कवि कृत 'विक्रमार्क चरित्र', अन्नतामात्य के 'भोजराजीयमु, रसाभरणमु तथा अनंतुनि चंदस्सु', गोरना मंत्री द्वारा विरचित हरिश्चन्द्रोपाख्यान और नवनाथ चरित्र, तिश्शंक कोम्मना प्रणीत, शिव लीला विलासमु, दूबगूंट नारायण कवि का पंचतन्त्रमु, वेन्नेलकंटि सूरना का विष्णु पुराण, नन्दि मल्लया प्रणीत प्रबोध चन्द्रोदयमु, घंट सिंगरूया कृत बराह पुराण, पिल्ललमर्रि पिन-वीरना प्रणीत जेमिनी भारतमु, नारदीय पुराणमु, शृङ्गार शाकुन्तलमु और अवतार दर्पणमु, ढग्गुपल्लि ढुग्गय्या के नाचिकेतोपाख्यान तथा कांचीपुर महात्म्यमु विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन काव्यों ने इस युग की महत्ता बढ़ायी, किन्तु इस युग के साहित्यिक वैभव का परिचय पोतना तथा श्रीनाथ की कृतियों द्वारा मिलता है।

पोतना महाकवि ही नहीं अपितु महान भक्त भी थे। इन्होंने कृषि-कार्य के साथ काव्य सर्जन भी किया है। इन्होंने श्रीमद्भगवत का तेलुगु में स्वतंत्रानुवाद किया और उसे अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्र के चरणों में समर्पित किया। कवि ने अपने काव्य के सृजन की प्रेरणा भगवान रामचन्द्र से प्राप्त की। इस काव्य का प्रणयन कवि ने भवसागर से मुक्ति पाने हेतु किया है—

"पलिकेडिदि भागवतमट
पलिकिंचेडुवाडु रामभद्रुंडट
ने पलिकिन भवहर मगुनट
पलिकेद वेरेंडुगाथ पलुकगनेल ।"

अर्थात्—"मैं भगवान की सर्जना कर रहा हूँ । भगवान रामचन्द्रजी स्वयं मेरे मुँह से बुलवा रहे हैं। इस ग्रन्थ की रचना द्वारा मैं भवसागर से पार पा सकता हूँ; अतः मैं किसी दूसरे काव्य का प्रणयन क्यों करू ?"

पोतना भगवत भक्ति प्रधान काव्य है। इसमें भक्ति और वेदांत संबंधी अनेक आख्यान वर्णित हैं जिनमें प्रह्लाद चरित, वामन चरित, श्रृङ्गार गजेन्द्र मोक्ष, नरकासुर वध, कुचेलोपाख्यान, ध्रुवोपाख्यान, अंबरीषोपाख्यान और रुक्मिणी-परिणय विशेष लोकप्रिय हैं। ये आख्यान महाकाव्य की श्रृंखला की कड़ियाँ होते हुए भी स्वतंत्र अथवा भिन्न खण्डकाव्यों के रूप में बन पड़े हैं। पोतना की कविता प्रांजल, ललित एवं मधुर है। इस काव्य में चमत्कार बैचित्र्य और उक्ति वैचित्र्य दृष्टव्य हैं।

कवि सार्वभौम श्रीनाथ इस युग की सबसे बड़ी विभूति थे। तत्कालीन सभी राजदरबारों में जाकर कनकाभिषेक का सौभाग्य प्राप्त किया। इनके वामपाद में गण्डपेण्डेर (स्वर्ण घंटिका) पहनाकर सम्राटों ने अपना अहोभाग्य माना। धन, कनक, वस्तु, वाहन, अग्रहार उपाधियाँ देकर इनका सत्कार किया। ये रेड्डी राजाओं के दरबारी कवि थे और वहाँ शिक्षाधिकारी के पद पर नियुक्त थे। अपने जीवन-काल में इस महाकवि ने जैसे ऐहिक भोग-विलासों का अनुभव किया, वैसा अन्य कवियों के लिए दुर्लभ था। तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान चिलुकूरि वीर भद्रराव ने एक स्थान पर लिखा है—"श्रीनाथ का जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने का अभिप्राय है, १५वीं शती के आन्ध्र देश का इतिहास लिखना।" इन्होंने एक दर्जन से अधिक काव्य-ग्रन्थों का सृजन किया है, जिनमें 'श्रृङ्गार नेषधमु', 'काशी खण्ड', 'भीम खण्ड', 'पलनाटि वीर चरित्र', 'शिवरात्रि महात्म्यमु', 'हरविलास' मुख्य हैं। तेलुगु कविता को प्रौढ़ता प्रदान करने का श्रेय श्रीनाथ को प्राप्त है। तेलुगु वाङ्मय की विविध शाखाओं को जन्म दिया तथा भाषा, भाव, शैली, छन्द, अलंकार आदि की दृष्टि से भी समृद्ध बनाया। चाटूक्तियों के कहने में भी ये अत्यंत पटु थे।

'सिरिगलवानिकि जेल्लुनु' नामक पद्य में कवि ने अपने आराध्य पर अच्छा व्यंग्य कसा है। इसमें उनकी विनोदप्रियता का भी परिचय मिलता है। एक बार कवि पहाड़ी प्रदेश में यात्रा कर रहे थे। उन्हें बड़ी प्यास लगी। आराध्य देव का स्मरण किया—हे परमेश्वर, विष्णु जैसे धनी व्यक्ति चाहे सोलह हजार नारियों के साथ विवाह कर सकते हैं, तुम तो फकीर हो, तुम्हें दो

पत्नियों की क्या आवश्यकता है ? पार्वती तो ठीक है, गंगाजी को छोड़िये ना ।'

इस युग के सन्त कवियों में वेमना का अनुपम स्थान है । सरस व मधुर लोकभाषा में वेमना ने जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं वे ज्ञान, भक्ति, सदाचार और नीति से ओतप्रोत हैं । इनकी सूक्तियाँ लोकोक्तियों की भाँति मनोहर होती हैं । ये आशु कवि थे । अपने अनुभवजन्य ज्ञान को इन्होंने तेलुगु के सरल छन्द 'कन्द', 'आटवेलदि' तथा 'तेज गीत' में अभिव्यक्त किया है । मूर्ति-पूजा, जप-तप, उपवास आदि बाह्याडंबरों की कटु आलोचना की । ये निर्गुणोपासक थे और इनकी सामाजिक भावना विद्रोहात्मक थी । इनमें और कबीर में पर्याप्त साम्य पाया जाता है । दुर्जन और सज्जन व्यक्ति का परिचय व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं के साथ साम्य बिठाते हुए कराते हैं—"अल्पुडेपुडु पल्कु नाडंबरमुगानु...." अर्थात्, "दुर्जन व्यक्ति सदा गप्पे हाँका करता है तो सज्जन सर्वदा मीठी बातें करते हैं—सत्य ही तो है—काँसे की तरह कनक (स्वर्ण) नहीं बज सकता ।"

वेमना साधक भी थे । अन्तिम समय में ब्रह्मज्ञानी हो वस्त्र धारण को भी त्याग चुके थे । उनका विचार है कि मानव जन्म के समय न वस्त्र पहन कर उत्पन्न होता है और न मृत्यु के समय वस्त्र धारण कर जाता है । ऐसी स्थिति में इस मध्य काल में वस्त्र धारण करना परिहास की बात तो नहीं ।

इस युग में तेलुगु ग्रन्थों के साथ संस्कृत में भी उत्तम कृतियाँ प्रस्तुत हुईं । इस युग के राजा केवल उत्तम शासक ही नहीं थे अपितु उच्चकोटि के विद्वान, आश्रयदाता और कवि भी थे । काटय वेमा रेड्डी ने कालिदास के नाटक-त्रय की व्याख्या लिखी । सर्वज्ञ सिंगम भूपति ने रसार्णव सुधाकर की व्याख्या लिखी तो वेद्दकोमटि वेमा रेड्डी ने साहित्य चिंतामणि की रचना की । नाटकों का तेलुगु अनुवाद भी इस युग में प्रारम्भ हुआ । काव्य में लौकिक पक्ष के साथ आध्यात्मिक पक्ष भी कविता वैभव के साथ प्रस्फुटित हुआ । परिणामस्वरूप वेमना-जैसे सन्त कवि का इस युग में प्रादुर्भाव हुआ । शतकों की रचना विपुल मात्रा में हुई । रीति ग्रन्थ भी अनेक आये । अन्यमाचार्य ने पद साहित्य का जन्म दिया और वे पद साहित्य के प्रवर्त्तक हुए, परवर्ती युगों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा ।

प्रबन्ध युग या रायल-युग (ई० सन् १५०१-१७००)

तेलुगु साहित्य के इतिहास में यह युग स्वर्ण युग माना जाता है । इस काल में उच्चकोटि के असंख्य प्रबन्ध काव्यों की सर्जना हुई जो काव्य-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट ग्रन्थ माने जाते हैं । विजयनगर के सम्राट कृष्णदेव ने न

केवल कवियों को आश्रय दिया, बल्कि श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य की रचना करके इस युग का प्रतिनिधित्व भी किया। अतः यह युग काव्यगत विशेषताओं के कारण प्रबन्ध-युग कहलाता है तो युग प्रवर्त्तक के नाम पर रायल युग भी। संस्कृत में दण्डी ने 'सर्ग बन्ध' नामक महाकाव्य के जो लक्षण बताते हैं, उन्हीं को तेलुगु के रीति-शास्त्रकारों ने प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों के रूप में स्वीकार किया है। तदनुसार प्रबन्ध-काव्य के निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किये गये हैं—

"संध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वांत वासराः
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन सागराः
संभोग विप्रलंभी च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः
रण प्रयणोपम मंत्र पुत्रोदयादयः
वर्णनीया यथा योगं सांगोपांगा अभी इह।"

ये प्रबन्ध-काव्य के अष्टादश वर्णन माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु सुप्रसिद्ध हो, धीरोदात्तादि नायकों में से एक काव्य-नायक हो, शृंगार रस प्रधान हो तथा अन्य रस आंगिक हो। काव्य मौलिक हो, रूपान्तर न हो। लाक्षणिक अथवा आलंकारिक शैली में इसकी रचना हो—ये प्रबन्ध-काव्य के अन्य लक्षण हैं। इष्टदेवता की प्रार्थना, सुकवि-स्तुति, कृतिभर्ता के गुणों का वर्णन इत्यादि अन्य आवश्यक उपांग हैं।

तेलुगु के प्रायः सभी प्रबन्ध काव्य चंपू हैं। प्रबन्ध काव्यों की अधिकता होने पर भी इस युग में रीति ग्रन्थ, द्विपद काव्य, द्वर्थि काव्य, व्यर्थि काव्य, ठेठ तेलुगु काव्य, शतक आदि पर्याप्त मात्रा में रचे गये। परन्तु प्रबन्ध काव्य दृश्य, श्रव्य तथा मधुर काव्यों के गुणों से युक्त हो, समग्र रूप में प्रस्तुत हुए।

प्रबन्ध-काव्यों के प्रेरणा-स्रोत सम्राट कृष्णदेव राय थे। इनके दरबार में अष्ट दिग्गज नाम से आठ महाकवि थे। वे महाकवि हैं—अल्लसानि पेद्दना, नंदि तिम्मना, अय्यलराजु रामभद्रकवि, धूर्जटि, मादयगारि मल्लना, पिंगलि सूरना, रामराजभूषण तथा तेनालि रामकृष्ण कवि। कृष्णदेवराय का सभा-भवन 'भुवन-विजय' नाम से विख्यात था, जहाँ सदा पंडित, आचार्य, कवि तथा अन्य कलाकारों की गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। जिनमें शास्त्र-चर्चा, कविता पाठ, समस्यापूर्ति, आशु कविता, अवधान कविता मुख्य थीं। उस सभा-भवन में तेलुगु भारती की प्रतिनित्य कविता सुमनों द्वारा ऐसी आराधना होती थी कि स्वयं कवियों के साथ सरस प्रेक्षकों का भी शरीर पुलकित हो उठता था।

कृष्णदेवराय संस्कृत के उद्भट विद्वान तो थे ही, साथ ही वे तेलुगु के मर्मज्ञ कवि भी थे। संस्कृत में आपने मदालसा चरित्र, सत्यवधू परिणय, सकल-कथा सार संग्रह, ज्ञान चिंतामणि, जाम्बवती परिणय, रसमंजरी आदि काव्य एवं नाटकों का प्रणयन किया। तेलुगु में 'आमुक्त माल्यदा'' नामक एक प्रबन्ध-काव्य की सृष्टि की जो 'विष्णुचित्तीयमु' नाम से विख्यात है। पेरियालवार का नाम ही विष्णुचित्त है। विष्णुचित्त द्वारा पालित गोदा देवी का वृत्तांत आमुक्त माल्यदा में वर्णित है जो वैष्णव धर्म का प्रतिपादन एवं उसकी उत्कृष्टता को प्रमाणित करने वाला काव्य ग्रन्थ है। इसमें विशिष्टाद्वैत मत का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। तेलुगु वाङ्मय के लिए यह काव्य अलंकार-प्राय है।

अल्लसानि पेद्दना ने ''स्वारोचिष मनुसंभव'' नामांतर मनुचरित्र का सृजन किया। इस काव्य पर मुग्ध हो सम्राट कृष्णदेव राय ने पेद्दना को 'आन्ध्र-कविता पितामह' नामक उपाधि से विभूषित किया। उनके वामपाद में गण्डपेण्डेर नामक स्वर्णकंकण पहनाया तथा कवि की पालकी तक उठायी थी।

मधुर कविता की रचना में नन्दि तिम्मना बेजोड़ थे। हरिवंश पुराण से कथावस्तु ग्रहण कर आपने ''पारिजातापहरण'' नाम से शृंगार रस प्रधान काव्य की सृष्टि की। पदलालित्य और अर्थ वैचित्र्य की दृष्टि से यह काव्य अनुपम कहा जा सकता है। अभिमानिनी सत्यभामा का चरित्र मनोहर शैली में वर्णित है। वस्तु तथा काव्यगत विशेषताओं की दृष्टि से इसकी समता कर सकने वाले ग्रन्थ भारतीय भाषाओं में अत्यल्प हैं।

पिंगलि सूरना ने कलापूर्णोदय, प्रभावती प्रद्युम्नमु तथा राघव पांडवीयमु नामक तीन प्रबन्ध-काव्य लिखे हैं, जिनमें कलापूर्णोदयमु हमें कामेड़ी आफ़ एर्रर्स का स्मरण दिलाता है। तेलुगु भाषा के मर्मज्ञ विद्वान इसे काव्योपन्यास मानते हैं। राघव पांडवीयमु द्वर्थि काव्य है। इसमें एक साथ रामायण तथा महाभारत की कथाएँ वर्णित हैं। रामराज भूषण ने भी हरिश्चन्द्र नलो-पाख्यान नाम से एक द्वर्थि काव्य लिखा है। उसमें हरिश्चन्द्र तथा नल के वृत्तांत वर्णित हैं। इनका 'वस्तु चरित्र' तेलुगु का उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। इस युग के अन्य विशिष्ट काव्यों में तेनालि रामकृष्ण कवि कृत पांडुरंग महात्म्यमु तथा उद्भटाराध्य चरित्र, धूर्जटी का कालहस्ती महात्म्यमु, मोल्ला कृत रामायण, राधा माधव कवि कृत राधामाधवमु, मादयगारि मल्लना प्रणीत राजशेखर चरित्र, अय्यलराजु रामभद्र कृत ''रामाभ्युदयमु'' गणनीय हैं। रीति ग्रन्थ, शतक, पद, यक्षगान आदि काव्य की अन्य नवीन विधाओं का उद्भव एवं विकास भी इस युग में हुआ है।

अर्वाचीन युग या संक्रांतिक युग (ई० सन् १७६१-१८५०) :

विजयनगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् वह साम्राज्य अनेक भागों में विभक्त हुआ। छोटे-छोटे सामन्त भी उन भू-भागों के स्वामी बन बैठे। ऐसे संक्रांतिक काल में तेलुगु कविता मथुरा, तंजाऊर, पुदुक्कोटा, पिठापुरम, बोब्बिलि, विजयनगरम (विशाख जिला), चन्द्रगिरि, नंद्याल, पेनुगोंडा आदि केन्द्रों में पल्लवित होने लगी। कुछ विद्वानों का यहाँ तक विचार है कि इस युग में अन्य युगों की समता में उल्लेखनीय साहित्य का सृजन नहीं हुआ है। अत: इसका नामकरण क्षीण-युग करना अधिक समीचीन होगा। परन्तु इस युग में भी तंजाऊर, मदुरे, विजयनगरम, मैसूर आदि राज्यों में जो साहित्य सृजन हुआ है, वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। तंजाऊर के राजा रघुनाथ राय ने कृष्णदेवराय की भाँति अनेक कवि, आचार्य एवं कलाकारों को आश्रय देकर तेलुगु वाङ्मय के विकास में स्पृहणीय योगदान दिया है। उन्होंने स्वयं भी अनेक काव्य लिखे हैं। उनके पश्चात् उनके पुत्र विजयराघव नायक ने तथा महाराष्ट्र के शासकों ने तंजाऊर के दरबार में तेलुगु साहित्य के सृजन में विशेष प्रोत्साहन दिया है। इस काल में पसुपुलेटि रंगाजम्मा, मुद्दुपलनि आदि उच्च कोटि की कवयित्रियाँ भी हुई हैं।

इस युग की उल्लेखनीय कृतियों में रघुनाथाभ्युदयमु, मन्नारुदास विलासमु, उषा परिणयमु, विप्रनारायण चरित्रमु, सत्यभामा स्वांतनमु, राधिका स्वांतनमु, रुक्मिणी परिणयमु, राम विलासमु, कविजनरंजनमु, अनिरुद्ध चरित्र, गोपीनाथ रामायणमु, भारताभ्युदयमु, शंकरविजयमु, आन्ध्र भाषार्णवमु, राजगोपाल विलासमु, चन्द्रालोकमु, गंगा गौरी संवादमु विलासमु, विष्णु-पुराण, हालास्यमहात्म्यमु, श्रीरंगमहात्म्यमु, सारंगधर चरित्र, अहल्या संक्रदनमु, चित्रकूट महात्म्यमु, चन्द्ररेखा विलापमु, नीला सुन्दरी परिणयमु, उत्तराय चरितमु आदि प्रसिद्ध हैं।

रीतिशास्त्र, यक्षगान, पद, द्विपद, काव्य, नाटक, दूषणग्रन्थ, कोश, व्याकरण इत्यादि विभिन्न प्रकार की रचनाएँ सैकड़ों नहीं बल्कि हज़ारों की संख्या में रची गयी हैं, जिनका उल्लेख मात्र करना भी संभव नहीं है।

आधुनिक युग (ई० सन् १८५१ से आज तक) :

तेलुगु वाङ्मय के आधुनिक युग का श्रीगणेश उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ। यह समय भारतीय साहित्य, इतिहास और समाज में भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील रहा है। इस युग की समस्त प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों का प्रभाव तेलुगु साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। विश्व-विद्यालयों की स्थापना के साथ ही साथ भारतीय विद्यार्थियों ने अंग्रेजी

साहित्य का अध्ययन करना प्रारंभ किया । गद्य के विकास के साथ अन्य अनेक नयी विधाओं का जन्म हुआ । परवस्तु चिन्नयसूरि ने बालव्याकरण नाम से तेलुगु का एक प्रामाणिक व्याकरण प्रस्तुत किया । तेलुगु भाषा के स्वरूप का निर्धारण किया और साथ ही नीति चन्द्रिका की रचना करके प्रामाणिक गद्य का भी सूत्रपात किया । व्याकरण के नियमों से आबद्ध भाषा को मुक्ति दिलाने के हेतु गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने व्यावहारिक भाषा नाम से तेलुगु की लोकभाषा को प्रचलित किया तो पंडित वीरेशलिंगम पंतुलु तथा गुरजाड अप्पाराव ने इस लोक भाषा में रचनाएँ करके इस आन्दोलन को बल प्रदान किया । पंतुलु ने साहित्य का इतिहास, नाटक, जीवनी, समालोचना, प्रहसन, आत्मकथा, निबंध, उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि की रचना तो की, साथ ही पत्र-पत्रिकाएँ चलाकर तथा पुरानी पांडुलिपियों का संशोधन करके उनके प्रकाशन द्वारा भी तेलुगु वाङ्मय की श्रीवृद्धि में असाधारण योगदान दिया है ।

राष्ट्रीय कविता :

गुरजाड अप्पाराव ने परम्परागत काव्य-रीतियों के विरुद्ध नयी शैली, नयी वस्तु और नयी रीतियों का जन्म दिया तथा राष्ट्रीय कविता का प्रणयन किया । 'देश भक्ति' में उन्होंने राष्ट्रीय भावना ध्वनित की है—

"देशमुनु प्रेमिचुन्ना, मंचियन्नदि प्रेमिचुन्ना...।
देशमंटे मट्टिकादोय, देशमंटे मनुष्युलोय"...॥

हे भाई, देश के साथ प्यार करो, अच्छाई को बढ़ाओ, देश के माने मिट्टी नहीं, देश के माने मानव है ।

कविता का लक्ष्य उन्होंने देश-प्रेम बताया है—

आकुलंदुन अणगिमनगि कवित कोयिल पलुक वले नोय ।
पलुकुलनु विनि देशमंदभिमानमुलु मोलकेत्त वलेनोय ॥

अर्थात् पत्तों की आड़ में छिपे रहकर कविता रूपी कोयल बोले, उस वाणी को सुनकर देश-प्रेम की भावना जागृत हो उठे ।

रायप्रोलु सुब्बाराव ने राष्ट्रीय कविता के साथ भाव-कविता का सूत्रपात किया । यह परम्परा बहुत समय तक अविच्छिन्न चलती रही । प्राचीन भारत की गरिमा का भव्य चित्रण इनकी कविता की विशेषता है । उसी गरिमा का गान किया है रायप्रोलु ने—

वेदशाखलु वेलसे निच्चट
अदि काव्यं बलरे निच्चट

अर्थात्—वेद की शाखाएँ यहीं पर फूट निकलीं। आदि काव्य का प्रणयन इस भूमि पर हुआ है। राष्ट्रीय कविता का पोषण करने वालों में कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण, दुब्वूरि रामिरेड्डी, अब्बूरि रामकृष्णराव, कोडालि सुब्बाराव, अडवि बापिराजु, वेदुल सत्यनारायण, जासुवा तथा तुम्मल सीता-राममूर्ति चौधरी के नाम अविस्मरणीय हैं।

भाव कविता :

भाव कविता हिन्दी की छायावादी कविता के सदृश होती है। यह कविता आत्मपरक होती है। लाक्षणिक प्रयोग, भाषा में वक्रता, प्राकृतिक आकर्षण, गेयात्मकता, प्राकृतिक उपकरणों में मानवीकरण, प्राचीन काव्य संप्रदायों के विरुद्ध विद्रोह इस कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं। इस कविता में कवि की अनुभूति अनन्यारोपित, तीव्र एवं स्वाश्रय होती है। भाव-सौन्दर्य तथा रीति-सौन्दर्य इस कविता की अन्य प्रवृत्तियाँ हैं। भाव कवि अपने वांछित मनोधर्म के अनुरूप भाव-तीव्रता का आराधक रहा है; अतः अपने मनोधर्म को प्रतिबिंबित करने वाली ऐसी कविता का नामकरण उसने 'भाव कविता' किया है। पूर्वापर घटनाओं से मुक्त हो केवल किसी एक भाव का चित्रण करने वाली गेय कविता भाव-गीत कहलाती है। यही हिन्दी में गीत काव्य से विख्यात है। भाव कविता का शुभारम्भ रायप्रोलु ने किया किन्तु इसे मार्दव एवं प्रौढ़ता प्रदान करने का श्रेय श्री देवुलपल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री को प्राप्त है। भाव कवि आकांक्षा करता है—

सच्चिदानन्द कल्याण सदनमयिन
यी मनोहर जगतिकि नेगुदेंचि
प्रेमलक्ष्मिनि आराधिपवेमि यकट !

अर्थात्—यह मनोहर जगत् सच्चिदानन्द कल्याण का सदन है। इसमें जन्म धारण कर हे कवि, तुम प्रेम-लक्ष्मी की आराधना क्यों नहीं करते।

देवुलपल्लि ने अपने प्रेम की व्याख्या कैसी अनूठी उक्तियों में की है—

प्रेयदिकि लेदु शरीरमु
लेदु मेनु ना तीयनि प्रेमकेनि
कलदे एडबाटिक माकु।

अर्थात—मेरी प्रेयसी की कोई देह नहीं है, मेरे मधुर प्रेम का भी शरीर नहीं है। फिर भला हम दोनों का वियोग ही क्यों होगा.।

इस कविता को पुष्ट करने वालों में मल्लवरपु विश्वेश्वरराव अब्बूरि, नायनि सुब्बाराव, स्वामी शिवशंकर शास्त्री, नंडूरि सुब्बाराव के नाम गणनीय

हैं। नंडूरि ने 'एंकि पाटलु' नाम से जो गीत प्रस्तुत किये हैं वे तेलुगु काव्य की अनुपम निधियाँ हैं।

अभ्युदय कविता :

भाव कविता के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप जिस काव्य का सृजन हुआ है, वह अभ्युदय कविता नाम से विख्यात है। भाव कवि ने अपनी भावात्मक अनुभूति को एक सीमा तक व्यक्त करने में सफलता पायी। किन्तु वह सर्वांगीण काव्य-सर्जन के लिए आगे चलकर समर्थ एवं सफल सिद्ध न हो सकी। समाज की प्राचीन मान्यताएँ टूटने लगीं। विज्ञान की उन्नति ने मानव को अधिक वास्तविकता का बोध कराया। संसार में पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष प्रारंभ हुआ। आर्थिक क्रांति के साथ सामाजिक समता का स्वर तीव्र हो उठा। अग्रगामी जन-शक्तियों ने पूँजीवादी नेतृत्व का विरोध किया। इनके अतिरिक्त देश में अकाल, दरिद्रता, गुलामी तथा जीवन की जटिल समस्याओं ने साहित्य और कविता की गति बदल दी। नवीन मान्यताओं को स्थापित करते हुए तेलुगु में अभ्युदय कविता (प्रगतिशील कविता) का जन्म हुआ। इस कविता के प्रवर्तक श्रीसंगम श्रीनिवास राव (श्रीश्री) माने जाते हैं। 'महाप्रस्थान' गीत-संग्रह द्वारा अपने नवीन जनवादी कविता का सूत्रपात किया। तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को विच्छिन्न करके उसके स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थापित करना चाहा। इस आशय के पोषण में काव्य का निर्माण किया। वे नये संसार की सृष्टि के आकांक्षी हैं—

"पुडमि तल्लिकि पुरिटिनोपुलु (नोप्पुलु)
मरो प्रपंचं स्फुरिस्तुंदि"

अर्थात पृथ्वी माता की प्रसव-वेदना नयी दुनिया के आविर्भाव का स्फुरण दिला रही है।

कवि कभी आशा-निराशा के द्वन्द्व में पड़ जाते हैं तो कभी मानव-समुदाय के अभ्युत्थान के समय को निकट देखते हैं। कभी भयंकर द्वेषाग्नि प्रज्ज्वलित करने वाली दानवता के विनाश की कामना करते हैं, तो कभी अपनी आहुति का परिचय देते हैं—

"नेनु सैतमु प्रपंचाग्नि" नामक गीत द्वारा यह आशय अभिव्यक्त करते हैं तो फिर कभी अपना आत्म-परिचय देते हैं—भूत हूँ, यज्ञोपवीत हूँ, विप्लव-गीत हूँ।

अभ्युदय कविता के पोषक कवियों में श्रीरंगम नारायण बाबू, आरुद्र, अनिशेष्ट्टि सुब्बाराव, बेल्लमकोंड रामदासु, कुंदुर्ति आंजनेयुलु, पुल्यूरि

सुब्रह्मण्यम, दाशरथी, कालोजी नारायणराव, अजंता, के० वी० रमणा रेड्डी, रेंटाल, पुरिंपड़ा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

विविध प्रवृत्तियाँ :

तेलुगु कविता पर राष्ट्रीयता का प्रभाव है तो दूसरी तरफ अपनी मातृ-भूमि के प्रति अगाध अनुराग भी । इस परंपरा के काव्य-ग्रन्थों में 'आन्ध्र पुराण', 'महान्दोदय', 'नागार्जुन सागर', 'पेतुगोंड लक्ष्मी' आदि सुप्रसिद्ध हैं । श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु जंछाले पापय्या शास्त्री, बोठ भीमन्ना, सी० नारायण रेड्डी, पल्ला दुर्गयन आदि असंख्य कवियों ने तेलुगु काव्य-भारती की आरती उतारी है । तेलुगु में जितनी संख्या में कवि हैं, संभवतः किसी भाषा में इतनी संख्या में नहीं होंगे ।

नाटक :

तेलुगु में करीब दो हजार नाटक रचे गये हैं । प्रदर्शन की दृष्टि से भी अधिकांश नाटक मंच पर अभिनीत हो सफलता प्राप्त कर चुके हैं । कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ विजयवाड़ा केवल तेलुगु नाटक देखने आये थे । तेलुगु नाटकों की पृथ्वीराज कपूर, शांताराम आदि ने बड़ी प्रस्तुति की है । तेलुगु भाषा में कुरवंजी, यक्ष गान, भामा कलापमु, वीथि भागवतमु इत्यादि लोकनाट्य भी हैं जो अत्यन्त ही लोकप्रिय हैं । 'कन्याशुल्कमु' तेलुगु का प्रथम सामाजिक नाटक है जो अंग्रेजी नाटकों की शैली पर रचित है । संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी आदि भाषाओं से अनूदित नाटकों की संख्या भी कम नहीं हैं ।

तेलुगु में सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, पौराणिक, प्रगतिशील नाटक भी रचे गये हैं । वीरेशलिंगम पंतुल, धर्मवरमु कृष्णमाचार्युलु, चिलक-मर्ति लक्ष्मी नरसिंहम, आत्रेय, नार्ल वेंकटेश्वरराव, वेलमु वेंकटराय शास्त्री, राजमन्नार, मुद्दु कृष्ण, अनिशेट्टि, श्रीवात्सव, भमिडिपाटि, डी० नरसराजु, मल्लादि, आत्रेय प्रभृति ने इस शाखा को परिपुष्ट किया है । आन्ध्र प्रदेश में सैकड़ों की संख्या में नाटक-कंपनियाँ स्थापित हैं । चिलकमर्ति कृत "गयोपा-ख्यानमु" नाटक की डेढ़ लाख से अधिक प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं । तेलुगु रंगमंच के विकास का यह एक उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है ।

अन्य विधाएँ :

तेलुगु का गद्य साहित्य पर्याप्त प्रौढ़, पुष्ट एवं विविध शास्त्र ग्रन्थों से पूर्ण है । आलोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, वैद्यक, शास्त्र, धर्म, दर्शन, इतिहास, विज्ञान, तर्क, न्याय आदि शास्त्रों से सम्बन्धित ग्रन्थ भी पर्याप्त मात्रा में रचे गये हैं ।

तेलुगु का उपन्यास और कहानी-साहित्य भी समृद्ध कहा जा सकता है। तेलुगु में इस समय सैकड़ों कथाकार हैं। विविधता, व्यापकता और नवीनता को लिये तेलुगु कथा वाङ्मय विकास के पथ पर अग्रसर है। पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भी कथा वाङ्मय को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। तेलुगु की विशेषता यह है कि इसमें लेखिकाओं की संख्या भी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक है। ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक उपन्यास भी तेलुगु में रचे गये हैं।

जीवनी और आत्म-कथाओं की रचना भी समय-समय पर हो रही है। समाज-सुधारकों, राजनैतिक नेताओं तथा युग-प्रवर्त्तक कवि और लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं।

शास्त्र तथा वैज्ञानिक साहित्य का भी प्रचुर मात्रा में सृजन किया जा रहा है। लोक-साहित्य के पुनरुद्धार का प्रयत्न चालू है। आन्ध्र प्रदेश के तीनों विश्वविद्यालयों, अकादमियों तथा तेलुगु भाषा-समिति के द्वारा भी उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। कोश, व्याख्याएँ, व्याकरण आदि भी कम नहीं लिखे गये हैं। तेलुगु भाषा-समिति ने ''विज्ञान सर्वस्वमु'' नाम से १२ खण्डों में विश्वकोष के प्रकाशन की योजना बनायी और अब तक नौ खण्ड प्रकाशित भी हो चुके हैं। आन्ध्र प्रदेश सरकार भी यथाशीघ्र तेलुगु में समस्त कार्य चलाने का निश्चय किया है। अतः यह आशा की जा सकती है कि तेलुगु भाषा और साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

२

स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु साहित्य

तेलुगु के विख्यात महाकवि "श्रीश्री" ने स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु काव्य "त्वमेवाहम्" (श्री आरुद्र कृत) की भूमिका में बताया है, "हमें मुख्यतः स्मरण रखने की दो चीजें हैं---एक, भारत भर में राजनैतिक दृष्टि से अधिक जागृत प्रदेश आन्ध्र प्रदेश है। दूसरी—नवीन कविता के लिए समस्त भारत में तेलुगु भाषा का स्थान सर्वोपरि है। इन दोनों के बीच परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।" यह बात आज भी सत्य है। राजनैतिक चेतना तथा कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों में आन्ध्र प्रदेश आज भी अग्रणी है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही १९४३ में अभ्युदय लेखक संघ (प्रगतिशील लेखक संघ) की स्थापना हुई थी। इस संघ का साम्यवादी दल के सिद्धान्तों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। महाकवि श्रीश्री ने यह बात 'प्रगतिशील लेखक और विप्लव दृष्टिकोण' नामक लेख में स्पष्ट की थी। अभ्युदय लेखक जिन सामाजिक अत्याचारों को निर्मूल करने की व्यथा अनुभव करता है, उन्हीं के निर्मूलन के लिए अगर एक राजनैतिक दल प्रचार करता है तो कवि अपने शिल्प को अवश्य उसके वास्ते समर्पित करेगा।" किन्तु १९४७ में भारत जब स्वतन्त्र हुआ, तब मार्क्सवादी सिद्धान्तों की नहीं, बल्कि संवैधानिक प्रजातन्त्र की भित्ति पर राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई। उसी समय तेलंगाना आन्दोलन छिड़ा। इस आन्दोलन के साथ प्रगतिशील आन्दोलन ने नई उत्तेजना व प्रेरणा प्राप्त की।

तेलंगाना क्षेत्र में रजाकारों के अत्याचार भी हुए, जनता ने उनका विरोध किया। पुलिस की कार्रवाई, तेलंगाना का सशस्त्र संघर्ष, साम्यवादी दल तथा प्रगतिशील रचनाओं पर प्रतिबन्ध, प्रगतिशील शक्तियों के सहानुभूति दिखाने वाले लोगों के प्रति पुलिस के अत्याचार, इन सब घटनाओं ने तेलुगु साहित्य को प्रभावित किया। खासकर तेलुगु कविता पर इन घटनाओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हुआ। इसी राजनैतिक जागृति का परिणाम है—सर्वश्री अनिशेट्टी सुब्बाराव कृत "अग्नि वीणा", दाशरथी कृत "रुद्र वीणा"

तथा "अग्नि धारा", सामसुन्दर विरचित "वज्रायुधम्", रेंटाल राघवराव रचित "संघर्षण" और आरुद्र कृत "त्वमेवाहम्"। गद्य के क्षेत्र में भी उपर्युक्त आन्दोलन से प्रभावित सुन्दर रचनाएँ आविर्भूत हुईं। श्री सुंकर सत्यनारायण तथा वासिरेड्डी भास्करराव ने सम्मिलित रूप में "मा भूमि" (जमीन हमारी) नामक नाटक रचा, जिसे कांग्रेसी सरकार ने जब्त किया था। अनेक वर्ष पश्चात् इस नाटक के प्रकाशन पर से प्रतिबन्ध हटाया गया।

तेलंगाना में साम्यवादियों ने इसलिए सशस्त्र क्रांति और गोरिल्ला-युद्ध शुरू किया कि उनकी दृष्टि में राष्ट्रीय सरकार साम्राज्यवादियों की जी-हुजूरी करने वाली सरकार है। वे अपने सिद्धांतों के अनुरूप साम्यवादी सरकार स्थापित करना चाहते थे। वे असफल हुए। पुलिस कार्रवाई के साथ तेलंगाना भारत संघ का अन्तर्भाग बना। इससे साम्यवादी आन्दोलन को गहरा आघात लगा। परिणामस्वरूप उन्हें अनिवार्य रूप से अपने कार्यक्रमों में परिवर्तन लाना पड़ा। कुछ लेखकों की साम्यवादी कार्यक्रमों के प्रति आस्था शिथिल और प्रजातन्त्र के प्रति सुदृढ़ हुई। फलतः वे तेलुगु देश, तेलुगु भाषा, तेलुगु जाति का गान करने लगे। इस संदर्भ में "महांध्रोदय" जैसे काव्य प्रकाश में आये।

उपर्युक्त आन्दोलनों के प्रभाव से १९५२ के चुनाव में साम्यवादी दल की आशातीत विजय हुई। आन्ध्रवासियों ने तीस वर्ष तक "विशाल आन्ध्र" का जो आन्दोलन चलाया, वह साकार हुआ। विभिन्न राज्यों में बँटे आन्ध्र के प्रान्त में शासन के अन्तर्गत आ गये। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन आन्दोलन का बीजारोपण आन्ध्रवासियों ने ही किया था।

आन्ध्र प्रदेश की स्थापना के साथ ही तेलुगु को शासन के स्तर पर मान्यता दिलाने का प्रयत्न हुआ। इसी अवधि में तेलुगु कविता में वस्तु और शैली सम्बन्धी बहुत बड़ा परिवर्तन आया। यों तो छन्दोबद्ध कविता को तिलांजलि देने का प्रयत्न इसके पूर्व ही हो चुका था, किन्तु इस अवधि में गद्य कविता एक आन्दोलन के रूप में सामने आई। साथ ही जहाँ पहले कृषक, मजदूर, कलित, शोषित एवं पीड़ित प्रजा का स्वर तेलुगु कविता में बुलन्द था, वहाँ अब गुमाश्ते, क्लर्क, बेरोजगार व मध्यम वर्ग ने भी अपना स्थान बना लिया।

उपर्युक्त विचारधारा से भिन्न स्वर हमें अजन्ता, केशवराव, गोपाल चक्रवर्ती, अपिराल विश्वम, इत्यादि की कविता में दर्शित होता है। इनकी कविता में राजनैतिक चेतना की अपेक्षा मानसिक संवेदनशीलता अधिक दृष्टिगत होती है। इस स्थिति का चित्रण कविश्री आरुद्र के शब्दों में स्पष्ट हुआ है—"श्री केशव राव जहाँ अनूदित प्रभाव को देख सके, वहाँ पर

मादिराजु रंगाराव "जागृत आकाश" तथा उसके भीतर के "किर्मोरो" के दर्शन कर सके। श्री गोपाल चक्रवर्ती ने "कलम के स्वप्न" देखे, अपिराल विश्वम् ने "कालं गीस्तुन्न गीतल" अर्थात् काल द्वारा खींची गयी रेखाओं को स्वीकार किया तो बापू रेड्डी ने चैतन्य रेखाओं को पहचाना। इस प्रकार जहाँ प्रगतिशील लेखकों का आन्दोलन सो रहा था, वहाँ पर प्रगति जागृत थी।"

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ पुलिस की कार्रवाई और निजामशाही की समाप्ति का सर्वत्र स्वागत हुआ। निजामशाही के क्रूर शासन से मुक्ति के लिए राष्ट्रवादियों ने भी अथक प्रयत्न किया था; किन्तु प्रगतिशील शक्तियों का इसमें बहुत बड़ा हाथ था। उन्हीं दिनों जो काव्य प्रकाश में आये, उनमें सर्वश्री कुन्दुर्ति आंजनेयुलु द्वारा विरचित "तेलंगाना" और गंगनेनि वेंकटेश्वर राव विरचित "उदयिनी" तेलंगाना के संग्राम का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। इसी संदर्भ में रेंटाल गोपाल कृष्ण कृत "सर्पयाग" और "संघर्षण" भी उल्लेखनीय हैं। श्री अनिशेट्टि सुब्बाराव ने "अग्नि वीणा" नामक काव्य-संग्रह में बताया है—"प्रति ओकड़ू शिवुडु नेडु" अर्थात् अनेक व्यक्ति आज एक शिव है। विज्ञान के पथ पर पग धरने वाले मानव को सचेत करते हुए कवि कहता है—"अधिरोहण की दशा में तुम्हारे कदमों में गलत ताल-लय नहीं करूँगा।" इसी परम्परा में "युगे-युगे" काव्य का प्रादुर्भाव हुआ। साम्यवादी विचारधारा ने क्रांति का जो आन्दोलन चलाया, जिसका लक्ष्य केवल मात्र विप्लव था, उसकी परिधि को पार कर राष्ट्रीय प्रजातन्त्र का पोषण "तेलंगाना" नामक काव्य में हुआ है। एक समीक्षक ने बताया है कि कुन्दुर्ति की कविता में यह जो परिवर्तन आया है, वह प्रगतिशील कविता को पीछे छोड़ नवीन कविता-युग का स्वागत करता है। उनके द्वारा विरचित "तेलंगाना" काव्य एक प्रकार से दो युगों के लिए सेतु के समान है। प्रगतिशील कविता आन्दोलन के दो प्रमुख व महान काव्य ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं, एक छोर पर महाकाव्य श्रीश्री द्वारा प्रणीत "महाप्रस्थान" और दूसरे छोर पर "तेलंघाना"। ये दोनों काव्य अपनी कविता-शक्ति के बल पर सब प्रकार की कसौटियों पर कसे जा सकते हैं। यदि प्रथम काव्य प्रगतिशील धारा की आधारशिला है तो दूसरा उसका उच्च शिखर है। एक जलप्रपात है तो दूसरा जलधारा है। गुन्दुर्ति ने इस काव्य के द्वारा गद्य कविता को प्रधानता दी। काव्य भाषा लोक भाषा बनी।

तेलंगाना में साम्यवादियों द्वारा जो सशस्त्र आन्दोलन चलाया गया था, उसके समर्थन में अनेक कवियों ने असंख्य काव्य और नाटक रचे। कई कवियों को तत्कालीन सरकार ने जेलों में बन्द किया और 'मा भूमि' जैसे

नाटक जब्त किये । आन्ध्र में ही संभवत: पहली बार कवियों को कारागार में भेजा गया ।

राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ युवा पीढ़ी के कवियों में तीन प्रकार की विचारधाराएँ दृष्टिगोचर हुई हैं—पहली विचारधारा के कवि, काव्य तथा समाज में जो परिवर्तन हुए हैं, उनके अत्यन्त निकट रहते हुए उन्हें भली-भाँति समझकर अपनी प्रतिभा के बल पर उनकी व्याख्या करते हैं । दूसरी कोटि के कवि उपर्युक्त परिवर्तन से संतुष्ट न होकर भविष्य में सुन्दर परिवर्तन की कामना करने वाले हैं और तीसरे वर्ग के कवि वे हैं जो वर्तमान में साँस लेते हुए भी वैचारिक क्षेत्र में अनेक पीढ़ियों पीछे हैं । तीसरे वर्ग के कवियों का चित्रण यहाँ अनावश्यक है ।

युवा पीढ़ी के जिन विचारशील कवियों ने निजाम की तानाशाही पर व्यंग्य कसा, भर्त्सना की, निन्दा की, फलत: कारागार में जाना पड़ा, उनमें दाशरथी एक हैं । दाशरथी ने निजाम नवाब को वृद्ध जम्बूक बताया था । दाशरथी प्रारम्भ में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे, कालांतर में राष्ट्रवादी विचारधारा के समर्थक बन गये ।

सोमसुन्दर ने रजाकारों के विरुद्ध अपना स्वर बुलन्द किया । "गुलामों का हमला" नामक कविता इसका प्रबल उदाहरण है । सोमसुन्दर को कारागार में नहीं जाना पड़ा । पर उनका काव्य "वज्रायुध" जब्त हुआ । ये प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख कवियों में से हैं । १९५३ में गोदावरी नदी में जो भयंकर बाढ़ आयी, उसकी विभीषिका का चित्रण उनकी "गोदावरी जल-प्रलयम्' कविता में दर्शनीय है । कवि गोदावरी से प्रश्न करते हैं ।—"हे माते, सद्य: प्रसव देने वाली शेरनी हो तुम । अपनी ही संतान को निगल डालती हो, यह कैसा न्याय है ? तालवृंत्त बनकर बहने वाली तुम्हारी तरंगें आज तालवृक्ष के बराबर उमड़ पड़ीं ।"

प्रगतिशील तत्वों के साथ परम्परावादी कविता की धारा भी अंतर्वाहिनी के रूप में धीमी चाल से वह रही है । ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने देश, काल एवं स्थिति के ऊपर उठकर कलात्मक तत्वों को प्रश्रय दिया । कतिपय कवियों ने सामयिक विचारधारा का पोषण करना अधिक समीचीन समझा । बुद्ध की २५००वीं जयन्ती से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने शांति, अहिंसा तथा सत्य की पुन: प्रतिष्ठा पर जोर दिया । इसकी पुष्टि में प्रकाश में आये काव्य "बोधिसत्व", "नागार्जुन सागर" इत्यादि । तिलक जैसे भावप्रवण कवियों ने अपनी कविता द्वारा मानवतावाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है । वे कहते हैं, "जीवन-मृत्यु के बीच जीवन में चारों तरफ संदेह-जैसा अंधकार व्याप्त है । उसके भीतर चंदन-जैसी सुगंधित मानवता ही हमारा

एकमात्र अलंकार है ।" आगे कहा है—"कविता हृदय के अंतर की ज्योतिपूर्ण सीमाओं को प्रकट करे और चेतना की परिधि का विस्तार हो, चाहे अग्नि की वर्षा हो या अमृत की, उसका परम लक्ष्य सौन्दर्य और आनंद ही है ।"

१९६२ में चीन ने भारत पर हमला किया; फलतः भारत के प्रगतिशील तत्वों को बड़ा धक्का लगा। इससे यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुयायी राष्ट्रों का ध्येय, अन्तर्राष्ट्रीय मातृत्व की अपेक्षा राष्ट्रीय-प्रयोजनों का संरक्षण प्रधान है । अतः प्रगतिवादियों में से अनेक राष्ट्रीय प्रयोजनों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और कविता में भी देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता ने पुनः अपना स्थान बनाया। लेकिन इसी कारण प्रगतिशील शक्तियों के बीच संघर्ष भी हुआ ।

एक वर्ग का कहना था कि प्रगतिशील आन्दोलन का मूलभूत तत्व देशीय नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय है । दूसरे वर्ग का विश्वास था कि अन्य देशों की ओर दृष्टिपात करने वाली दृष्टि त्याग कर अपने देश के कल्याण के हेतु काव्यसर्जन उचित है । मार्क्सवादी साहित्यकारों के वर्ग ने स्पष्ट किया कि श्रमिक जीवन में देश-विदेश का कोई अंतर नहीं होता । उस श्रम को लूटने वाले वर्गों की प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य का निर्माण होता है । श्रमजीवियों का दर्शन ही मार्क्सवाद है । उसके मूलभूत सिद्धान्त किसी भी समाज में विजातीय नहीं हो सकते ।

इस संक्रांति काल में चीन के प्रति अपना असंतोष प्रकट करते हुए जो काव्य प्रकाश में आये, उनमें श्री गज्जल मल्ला रेड्डी द्वारा विरचित "वृश्चिक संतान" गणनीय है । १९७० में प्रमुख प्रगतिशील कवि "श्रीश्री" की षष्टि पूर्ति विशाखपट्टणम् में मनायी गयी थी । उस वक्त कतिपय उग्रवादी कवियों ने चीन की सांस्कृतिक क्रांति, माओ का नेतृत्व, सशस्त्र क्रांति, श्री काकुलम का नक्सलपंथी आन्दोलन आदि का समर्थन करते हुये "विप्लव रचयितल संघम्" (क्रान्तिकारी लेखक-संघ) की स्थापना की जो "विरसं" नाम से प्रख्यात है । चीन के प्रति आक्रोश व क्रोध प्रकट करते हुए जो प्रगतिशील कवि अपने आशय को स्पष्ट करते हुये उस दल से बाहर आ गये, वे अभ्युदय कवि ही रह गये ।

"विरसं" की ओर से "झंझा", "ले" (उठो), "रा" (आ), "तिरगबडु" (विद्रोह कर) इत्यादि रचनाएँ आयीं । कतिपय पाठकों तथा युवकों को इन कृतियों ने उत्तेजित किया, पर विरसं के लक्ष्यों में "कमिटमेंट" अत्यन्त प्रधान है ।

श्री काकुलम् के गोरिल्ला युद्धों ने विरसं कवियों का उत्साहवर्द्धन किया, जैसा कि १९४८ में तेलंगाना के सशस्त्र आन्दोलन ने अभ्युदय (प्रगतिशील)

कवियों को प्रेरित किया था। फलतः जैसे अभ्युदय कवियों की कृतियों पर प्रतिबन्ध लगाया गया था, वैसे ही विरसं के कवियों के कविता-संकलनों को आन्ध्र सरकार ने न केवल विद्रोहकारी घोषित कर उन पर प्रतिबन्ध लगाया अपितु एक दर्जन के करीब लेखकों एवं कवियों को भी कारागार में बन्द किया। आन्ध्र के उच्च न्यायालय ने सरकारी नीति को अवैधानिक घोषित कर न केवल उन संकलनों पर से प्रतिबन्ध हटाया, बल्कि कवियों को भी मुक्त किया। किन्तु आपातकालीन स्थिति में पुनः कुछ कवियों को कारागार में भेज दिया गया और अदालत में उन पर एक मुकदमा दायर किया गया। परिणामस्वरूप सर्वश्री के० जी० सत्यमूर्ति, के० सीतारामय्या, के० वी० समणा रेड्डी, टी० मधुसूदन राव, चेरबंड राजू, एम० टी० खाँ, रंगनाथम् और बरवर राव को कारागार की सजा भोगनी पड़ी।

प्रतिवाद के साथ तेलुगु काव्य-जगत् में प्रयोगवाद अंतर्वाही बनकर प्रवाहित होता रहा। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दस वर्ष पूर्व ही कवि श्री पट्टाभि ने प्रयोगवादी कविता का शुभारम्भ किया था। उन्होंने अपने "फिडेल रागल डजन" में अच्छे प्रयोग किये। मात्र छन्द का बहिष्कार करते हुए उन्होंने कहा—

> ना ई वचन पषलने दुड्डु कर्रलतो
> पाघाल नडुमुल विरगदंतानु

अर्थात्, "मैं अपनी गद्य कविता रूपी इन लाठियों से कविता की कमर तोड़ दूंगा।"

दूसरी जगह कहते हैं—"क्रासवर्ड्स पजल्स जैसी तुम्हारी आँखों को हल करने का भाग्य किसका होगा ? हे वेश्ये, तुम समाज के लिए एक रद्दी की टोकरी हो।"

प्रयोगवादियों में मुख्यतः तात्विक दृष्टिकोण, व्यष्टिवाद तथा आत्मा-वलोकन के तत्व उभर आये हैं। भाषा-शैली तथा काव्य-वस्तु में भी एक सुनिश्चित लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है। इस परम्परा में खासकर कुन्दुर्ति, आरुद्र तथा तिलक के नाम अवश्य ही उल्लेखनीय हैं। तीनों ने गुमाश्ते के जीवन की विशद व्याख्या की, उसकी व्यथा की गाथा गायी है। कुन्दुर्ति ने यहाँ तक बताया कि—"गुमाश्ते का जीवन न मिटा सकने वाला जीवन ही मेरा गीत है।" "जाति तथा अनीति के बीच होने वाला संघर्ष ही मेरा गीत है।" मध्यवित्त परिवार का चित्रण करने में ये तीनों पर्याप्त सफल हुए हैं। गुमाश्ते के जीवन का कलात्मक चित्रण इनकी कविताओं में पाया जाता है। श्री आरुद्र कृत "एन० जी० ओ० सन" (N. G. O. Sun) इसका उत्तम

उदाहरण है। श्रीश्री ने भी प्रयोगवादी सुन्दर कविताएँ की हैं। वे कहते हैं—

"शिशु को न प्राप्त होने वाले स्तन्य जैसा
बहता है गोदावरी जल।"
"फटे कलेजे की भाँति खेतों में दरार पड़
गई।"
"हमारे उद्योग योजनाओं में बंद हैं।"
"हमारी प्रतिभा सेवा के लिये बंधक है।"

\+ \+ \+

"अर्द्ध नग्न स्थिति में आसमान को ढँक
कर······"
"अधभरे पेट, जलने वाली आँखों से
इस प्रकार हे मानव, कब तक खड़े रह
सकोगे ?"

कुछ ऐसे कवि भी रहे जो प्रगतिशील तत्वों से प्रभावित स्वतन्त्र विचारधारा के थे। तिलक ने अपनी कविता का ध्येय तटस्थ होकर स्पष्ट किया है—

"मेरी कविता का कोई तत्व नहीं
आप जो सोचते हैं, वह मनस्तत्व नहीं,
धनिकवाद तो किसी भी हालत में नहीं,
साम्यवाद भी नहीं—
पर है—मानवता, करुणा
और सौन्दर्य है मेरी कविता।"

आरुद्र ने कविता में रीति को प्रधान माना। वैसे, कविता में उन्होंने जितने प्रयोग किये हैं, उतने शायद ही अन्य कवियों ने किये हैं। ये प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी होते हुए भी रीति को प्रमुखता देते हैं। उनका कहना है—"जिसमें कविता के तत्व नहीं, जो चीज केवल प्रयोजन के हेतु लिखी गयी हो, वह स्वाद्य नहीं होती। प्रगतिशील तत्वों की विरोधी कविता का भी हम आदर करते हैं, उसके शिल्प की प्रशंसा करते हैं। शिल्पहीन उत्तम आदर्श प्रेरित करने वाली वस्तु पर हम हर्ष नहीं प्रकट कर पाते।"

व्यक्ति तथा समाज के मध्य होने वाले संघर्ष के आधार पर सामाजिक चेतना को ध्येय बनाकर गद्य कविता को अपनाने वाले कवियों में दिगम्बर कवियों का स्थान भी उल्लेखनीय है। इस श्रेणी में वरवर राव, सी० विजय

लक्ष्मी, सी० वी० कृष्णा राव, वे० नरसिंहा रेड्डी, जगन्नाथ राव, मिरियाल रामकृष्ण इत्यादि के नाम अवश्य लेने चाहिये। दिगम्बर कविता का जन्म वस्तुतः १९६७-६८ में हुआ है।

दिगम्बर कवियों ने सामाजिक अत्याचारों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हुये अनेक रचनाएँ कीं। इस आशय के तीन काव्य-संग्रह भी प्रकाश में आये और पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। निखिलेश्वर, महास्वप्न, चेरबण्ड राजु इत्यादि दिगम्बर कवियों ने समष्टिगत दायित्व को ग्रहण कर अत्यन्त आत्मविश्वास के साथ वर्तमान समाज की धज्जियाँ उड़ायीं और उसे जलाकर भस्म कर देने का आवाहन किया। उनकी कविता के तांडव एवं विकट अट्टहास ने पाठकों में जहाँ प्रारम्भ में हलचल मचा दी वहीं बाद में उनके जुगुप्सापूर्ण शब्दों के प्रयोग ने विरक्ति एवं घृणा पैदा की। प्रायः सभी दिगम्बर कवि अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पाठकों में प्रारम्भ में आवेश एवं उद्रेक जागृत करने में ये कवि सफल हुए। इन कवियों ने पाठक वर्ग को यह आश्वासन दिया—"हम मानव द्वारा ओढ़े गये नकाब को फाड़ देंगे। श्मशान के सिर पर फूलों के पौधे उगायेंगे। निरन्तर शोषित एवं पीड़ित विश्व में अपनी कविता के द्वारा एक नया मोड़ ला देंगे। अपने नेत्र की ज्वालाओं के द्वारा जगत् के लुच्चे-लफंगों को भस्म कर देंगे।"

महास्वप्न नामक कवि का कहना है—"आप लोगों की रक्षा करने वाले इस अंधकारपूर्ण शिला-दुर्ग को तोड़ दूँगा। इस सभ्यता का मान भंग करूँगा। (सतीत्व लूटूँगा), प्रत्येक बाँबी को तोड़, विष-भुजंगों को पकड़ उनके दाढ़ निकालूँगा। इस भयंकर अरण्य में दावानल पैदा करूँगा। इस सभ्यता के रावण का लंका-दहन करूँगा।" इस प्रकार समाज के मानव की दुर्बलता पर खीझकर उसे राक्षस मानना समीचीन नहीं लगता। पर दिगम्बर कवियों ने जो नये उपमान दिये, जिस शैली में अपनी अभिव्यक्ति दी, उसके कारण वे शीघ्र ही प्रकाश में आये और उनका अधिक प्रचार भी हुआ। इस आक्रोश के पीछे उनका आशय यह है—"व्यक्ति के भीतर समूल परिवर्तन होना चाहिये। यह इसलिये सम्भव नहीं है कि आज के समाज में प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार अपने ऊपर नकाब धारण किये हुए है जिससे वह वास्तव में पूर्ण रूप से साँस नहीं ले पाता; अतः उस नकाब को हटाकर उसे एक सच्चे मानव के रूप में प्रकट होना है।" इसी ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—"तुम्हारी अस्थियों के भीतर समाये हुए सत्य को कीचड़ से मत ढँको। मानव बनो—लाल गुलाब की भाँति…अंगारे जैसे, यौवन की भाँति—मंदहास जैसे। वास्तव में गगन के बीच मार्त्तण्ड-जैसे—आधा क्षण जियो।" इस प्रकार वे

मानव को पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभर आने का आवाहन देते हैं, उनकी दुर्बलता पर आक्रोश एवं क्षोभ प्रकट करते हैं—उसकी निन्दा करते हैं, उसे गालियाँ देते हैं ताकि वह चौंककर, सँभलकर या चेत कर अपने नकाब को उतार फेंके। यही व्यथा उनकी कविता का लक्ष्य है।

इस प्रकार कतिपय त्रुटियों के बावजूद भी दिगम्बर कवि निस्सन्देह रूप से प्रतिभाशाली कवि हैं। कविता को दिगम्बर कवियों ने जो नये उपमान, अलंकार, प्रतीक, रस, ध्वनि, व्यंग्योक्ति एवं विलक्षणता प्रदान की, वह प्रशंसनीय है। इनकी कविता की एक बानगी देखिये—

काल-कांता के संग
बीसवीं शती की सौर-शय्या पर
संश्लिष्ट समस्याओं का
सौरभ घ्राण करते हुए
पल-पल संघर्ष के साथ रमण करते
शुक्रेतर समस्त ग्रहों के
संकेतों को सुना दूँगा
प्रलयों की तहों के नीचे
निश्शब्द को रूप दूँगा।

सामाजिक व्यथा तथा वैयक्तिक व्यथा से प्रेरित होकर उत्तम रचना करने वालों की संख्या आज पचास से कम नहीं है। उन सबका संक्षेप में ही सही, परिचय देना या एकाध उद्धरण देना भी इस छोटे से निबन्ध में सम्भव नहीं है। इनके अलावा स्वतन्त्र रूप से काव्य-रचना करने वाले प्रतिभाशाली कवियों की संख्या सैकड़ों हैं।

आरुद्रा ने अपनी कविता के माध्यम से प्रतीकवाद को जन्म दिया। इनके प्रतीक बड़े ही भावबोधक हैं। एक उदाहरण, "जीवितं" रेडियो सेट्टुकी, "भर्त एरियल भार्य अर्थ" अर्थात् जीवनरूपी रेडियो-सेट के लिए अगर पति एरियल है तो पत्नी अर्थ। उन्होंने तेलुगु कविता में अनेक सफल प्रयोग किये। उनकी फुटकल कविताओं में ही नहीं, "सिनीवाली" नामक काव्य-संग्रह में भी ये प्रयोग पढ़ते ही बनते हैं। इस दिशा में तिलक, कुन्दुर्ति, दाशरथी, शिष्ट्ला आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार कुन्दुर्ति द्वारा विरचित "युगे युगे" प्रयोगवाद में गद्य कविता का उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

प्रगतिशील कविता के साथ ही तेलुगु में लोक-भाषा के प्रयोग का मार्ग खुल गया था। किन्तु गत दो दशाब्दियों में ही इस भाषा को साधारण मानव के जीवन, सुख-दुःख, उनकी समस्याएँ आदि को व्यंजित करने का श्रेय प्राप्त

हुआ है। सच तो, प्रयोगवादियों ने ही गद्य कविता को न केवल जन्म दिया अपितु उसे उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। तिलक, कुन्दुर्ति, आरुद्ध आदि ने इस विधा में प्राण फूंके, बिंब कल्पना में अजन्ता कवि तथा बैरागी ने कलम तोड़ कर रख दी। उनकी कविता में कोमल शब्दावली भावना की दृष्टि से अन्तर्मुखी बनकर मानव की वेदना को मूर्त्त रूप देती है। आदिराजु रंगाराव ने मुक्तक नामक एक नयी प्रक्रिया को जन्म दिया। गोपाल चक्रवर्ती की कविता चमत्कारप्रधान है और शब्दों में श्लेष को ध्वनित करते हुए एक नूतन जीवन तत्व की व्याख्या करती है। यह प्रक्रिया इतनी लोकप्रिय और प्रभावशाली बनी कि उस समय तक पद्य तथा गीतों की रचना करने वाले कवि भी गद्य कविता के आश्रय में आने लगे।

गद्य कविता की वस्तु विविध रूपों में हमारे सामने आयी है। प्रतिभाशाली कवियों ने सूक्ष्म-दर्शिनी प्रतिभा द्वारा ज्वलन्त समस्याओं के व्यापक रूप की गहराइयों को दर्शाने का प्रयत्न किया है, कुछ लोगों ने किसी अदृश्य देवता या चन्दा मामा से अपनी समस्याओं का निवेदन किया है। कुछ लोगों ने स्वप्न रूप में उनका चित्र भी खींचा है। कतिपय कवियों ने उन्हें व्यंग एवं आक्षेप के रूप में प्रस्तुत किया है तो कुछ प्रबोधात्मक शैली में व्यक्त किया है, और कुछ ने आशानिराशा के स्वगत स्वर में।

भारतवर्ष गत तीस वर्षों से अनेक प्रमुख समस्याओं का सामना करता आ रहा है। अपर्याप्त खाद्यान्न, प्रकृति के प्रकोप से उत्पन्न अकाल, भूकम्प, परिवार नियंत्रण, अभी हाल में आये आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में तूफान तथा समुद्र के द्वारा की हुई ध्वंस लीला आदि। कोई कहता है—"सर्वत्र क्षुधा गीत, आज की वायु में सौरभ नहीं है।" कोई व्यथा का हृदय लेकर आक्रन्दन कर उठता है—"अपना भार आप ही न ढो सकने वाली भूख।" एक ओर विद्यालय में अशान्ति है, हड़तालें हो रही हैं तो दूसरी ओर मजदूरों की हड़तालें।""आज जो हड़तालें हो रही हैं, इनका नेपथ्य क्या है, ये समस्याएँ भी कवियों को विकल कर रही हैं।

इसी समय कविता के क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित हुआ। वह है शक्तिशाली इतिवृत्ति वाली आधुनिक काव्य-रचना। डॉ० सी० नारायण रेड्डी ने ऐतिहासिक इतिवृत्ति को ग्रहण कर "नागार्जुन सागरम्", "कर्पूर वसन्त रायलु", "विश्वनाथ नायकुडु" जैसे सुन्दर काव्य-ग्रन्थों का निर्माण किया है। नारायण रेड्डी की कविता में प्रगतिशील तत्वों का अभाव नहीं है। वे विशुद्ध मानवतावादी हैं। गीतों की रचना में श्री रेड्डी सिद्धहस्त हैं। उन्होंने प्रायः उन सभी समस्याओं को अपनी कविता का लक्ष्य बनाया जिसने कवि के हृदय को उद्वेलित किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सर्वश्री कोडवटिगंटि कुटुम्बराव, गोपीचन्द,

नोरी, नरसिंह शास्त्री, चलम, विश्वनाथ सत्यनारायण इत्यादि ने अनेक उपन्यास लिखे जो सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य विविध क्षेत्रों के हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन तथा गांधीवाद से भी प्रभावित दो-चार उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

श्री कोडवटिगंटि कुटुम्बराव ने स्वतन्त्रता के पूर्व ही "चदुवु" (शिक्षा) नामक उपन्यास लिखा था, जिसने बाद की पीढ़ी को भी अत्यन्त प्रभावित किया। श्री कुटुम्बराव सामाजिक सिद्धान्तों के प्रति स्पष्ट विचार रखने वाले लेखक हैं। राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के साथ सामाजिक सम्बन्धों में जो एक अन्योन्य सम्बन्ध है, उस विषय में वे अपनी एक स्वस्थ एवं स्पष्ट विचारधारा रखते हैं। उनका विश्वास है कि आर्थिक मूल्यों के आधार पर सामाजिक मूल्य आधारित होते हैं। मध्य वित्त परिवार के कृत्रिम मूल्य, आत्म वंचना, भय एवं संदेहों के साथ निम्न वर्ग की व्यवस्थाओं एवं शोषण के सजीव चित्र, विश्व संग्राम की विभीषिकाएँ, बेकारी, रुपये के अवमूल्यन द्वारा उत्पन्न विषम समस्याएँ आदि आपकी रचनाओं के इतिवृत्त हैं।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में क्रान्तिकारी तत्वों को प्रश्रय देने वालों में राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री अग्रगण्य हैं। उनके उपन्यासों में "अल्पजीवी", "राजू-महिषी", "गावुलोंस्तुन्नायि", "जागृत" इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "अल्पजीवी" में बाह्य संघर्ष के साथ आन्तरिक संघर्ष पढ़ते ही बनता है। इस उपन्यास का कथानायक सुब्बय्या स्वभाव से भीरु और कायर है। वह चुपचाप अपमान और शोषण को सहता जाता है। वह किसी को धोखा नहीं देता, न घूस लेता है। गवरय्या जैसे ठेकेदार द्वारा वह कैसे शोषित होता है, उसका लम्बा इतिहास अंकित है। गवरय्या समाज के साथ प्रतिकार की भावना से प्रेरित हो उसे धोखा देकर, लूट कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। शास्त्री का दूसरा उपन्यास "राजू-महिषी" के संबंध में श्रीश्री ने अपने विचार यों व्यक्त किये हैं—"तेलुगु में जैसे पूर्ण संतोष प्रदान करने वाली कविता व कहानियाँ आयीं, वैसा उपन्यास आज तक नहीं आया। इस बात की मेरी शिकायत थी, पर मेरा विश्वास है कि यह उपन्यास एक समग्र रूप को प्राप्त कर सका है।" उन्होंने यहाँ तक कहा है कि "यह उपन्यास बीसवीं शती का क्लासिक माना जाएगा। इसमें ऐसी कोई बात नहीं रह गयी जिसका चित्रण न हुआ हो।"

श्री महीधर राममोहन राव राजनैतिक सिद्धान्तों का स्पष्ट अवगाहन करते हैं। उन्होंने "ओनमालु", "रथ चक्रालु" और "दावानलम्" नामक तीन उपन्यास लिखे, जिनका इतिवृत्त तेलंगाना में जमीन्दारों के विरुद्ध आन्दोलन का सजीव चित्र है। इसमें कृषक, मजदूर की दयनीय दशा के साथ

उनको इस स्थिति से मुक्त करने का सारथ्य करने वाला त्यागपूर्ण जीवन प्रस्तुत किया गया है। इसी इतिवृत्त को आधार बनाकर श्री वट्टिकोट आलवार स्वामी ने "प्रजल मनिषि" (जनता का मानव) तथा श्री दाशरथी रंगाचार्य ने "चिल्लर देवुल्लु" (फुटकर देवता या छोटे देवता) प्रस्तुत किये हैं। इनमें जमींदार और जमींदारों के अत्याचार तथा जनता का शोषण विविध दृष्टिकोणों में प्रस्तुत हुआ है।

तेलुगु उपन्यास साहित्य में अत्यन्त ही उल्लेखनीय कृति "चंघिस खाँ" है। तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासों में इसकी समता कर सकने वाला दूसरा उपन्यास नहीं है। मंगोल इतिहास का अनेक वर्षों तक अध्ययन और शोध कार्य करके श्री तेन्नेटि सूरी ने यह उपन्यास प्रस्तुत किया है। भाषा, भावना, शक्ति, शिल्प, गोबी मरुभूमि का चित्रण, चीन का समग्र रूप इस कृति में प्रतिबिंबित है। यदि यह उपन्यास अंग्रेजी में रूपांतरित हुआ होता तो इसे नोबेल पुरस्कार प्राप्त होता। इतिहासकारों ने चंघिस खाँ को अत्यन्त क्रूर मानव रूपधारी राक्षस घोषित किया है, मगर सूरी के उपन्यास में वह समस्त मंगोल जातियों का संगठन करने वाला महान वीर है। चंघिस खाँ अन्याय, अत्याचार, शोषण का अन्त करने के लिए प्रादुर्भूत एक मानवतावादी के रूप में इस उपन्यास में प्रस्तुत है। इस उपन्यास की समाप्ति में लेखक कहता है—"संघर्ष से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। चंघिस खाँ भयंकर प्रजा शोषण से अवतरित एक ज्वाला-रेखा है। जो विध्वंस की रेखा के उद्भव का विरोध करते हैं, उन्हें इस प्रश्न का समाधान देना होगा कि मानव-समाज में असहनीय प्रजा शोषण क्यों होना चाहिए।" एक सन्दर्भ में चंघिस खाँ अपने किये हुए कार्यों की कैफियत देता है—"उस दीन-हीन अवस्था में गोबी मरुभूमि की जनता को देखने पर मेरा हृदय फटा जाता है, आप लोग इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। समस्त गोबी जातियों को एक सूत्र में बाँधकर उन्हें एक शक्तिशाली जाति के रूप में परिणत किये बिना इन्हें मुक्ति नहीं है। इस सत्य का अन्वेषण मैंने अपने काल में ही किया है। इसी एक मात्र लक्ष्य की पूर्ति के लिए मैं दिन-रात कार्यरत हूँ। इस कार्य को सम्पन्न करने में मैंने अनेक अकृत्य किये। अनेक जातियों को समूल नष्ट किया है।"

आधुनिक मानव समाज, पारिवारिक समस्याएँ, मानव का भीतरी व्यक्तित्व तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आधार बनाकर असंख्य उपन्यास रचे गये। इस क्षेत्र में बलिवाड़ कांताराव, भास्करभट्टल, कृष्णा राव, सिंगराजु लिंगमूर्ति, आर० एस० सुदर्शनम्, रंधि सोमयाजुलु, इच्छापुरम् जगन्नाथ राव, पद्मराजू, धनिकोंडा, कोम्मूरि वेणुगोपाल राव, पुराणम् सुब्रह्मण्य शर्मा, सूर्य

प्रकाश राव, वीराजी, शारदा, पीलाप्रगड़ राघव, मंजुश्री, पोरंकि दक्षिणामूर्ति इत्यादि के नाम गणनीय हैं।

गत दशाब्दी के उल्लेखनीय उपन्यासों में एन० आर० नंदी का "नैमिषारण्य", श्री विनुकोंड नागराजु कृत "ऊबिलो दुन्न" (दलदल में भैंस) नवीन कृत "अंपशय्या" विशेष चर्चित हैं। "नैमिषारण्य" में अग्र वर्णों के द्वारा हरिजनों के प्रति किये जाने वाले अत्याचार, मध्य वित्त परिवारों की आर्थिक समस्याएँ, नौकरी पेशा नारियों की कठिनाइयाँ आदि रोचक ढंग से वर्णित हैं। नागराजु कृत "ऊबिलो दुन्न" तथा नवीन रचित "अंपशय्या" प्रयोगात्मक उपन्यास हैं। आज की सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को सांकेतिक रूप में उठाकर नागराजु ने जहाँ सोचने के लिये पाठकों को बाध्य किया, वहाँ "अंपशय्या" में नवीन ने विद्यार्थियों की समस्याओं, छात्रावास तथा विश्वविद्यालयों का जीवन तथा युवा पीढ़ी की उद्वेगपूर्ण प्रवृत्तियों का भी सजीव चित्रांकन किया है।

तेलुगु में आज सशक्त उपन्यास लिखने वालों की संख्या में महिला लेखिकाओं की संख्या भी कम नहीं है। विशेषरूप से चर्चित महिला लेखिकाओं में वीना देवी, सीता देवी, मुप्पाल रंगनायकम्मा, के० रामलक्ष्मी, लता, इल्लिंदल सरस्वती देवी, मालती चन्दूर, यद्यनपूडि, सुलोचना रानी, कोडूरि, कौशल्या देवी, परिमला सोमेश्वर, सी० आनंद रामम्, तुरगा जानकी राणी, काविलिपाटि विजयलक्ष्मी, कलिपाक रमामणि, वेदुल शकुन्तला, उन्नव विजयलक्ष्मी, मादिरेड्डी सुलोचना, डि० कामेश्वरी विशालाक्षी, कोमला देवी, छाया देवी, पी० रामलक्ष्मी वगैरह ने बीसों उपन्यास लिखे और इन लेखिकाओं ने पाठक वर्ग की परिधि को अत्यन्त व्यापक बनाया। उक्त लेखिकाओं की कृतियाँ भारी मात्रा में बिक्री हो रही हैं। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में इनके उपन्यास बराबर धारावाही छप रहे हैं। इनकी कृतियों पर अनेक फिल्में भी बनी हैं।

अधिकांश लेखिकाओं ने पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन उपन्यासों की विशेषता कही जा सकती है। किन्तु भाव, भाषा, शिल्प वस्तु तथा समाज में जागृति पैदा करने की दृष्टि से मुप्पाल रंगनायकम्मा कृत "बलि पीठम्", वीना देवी द्वारा रचित "हैंग की क्विक्" तथा "पुण्यभूमि आँखें खोलो", सीता देवी कृत "समता महिमनिषि" विशेष रूप से पठनीय हैं।

तेलुगु का कहानी साहित्य इतना समृद्ध है कि विश्व की किसी भी भाषा की रचनाओं से समता कर सकता है। विश्व-कहानी-प्रतियोगिता में

श्री पद्मराजु कृत तेलुगु कहानी "गालि वान" (तूफान) ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया था। गुणाढ्य ने इसी प्रदेश में बृहत्कथा लिखी थी। वस्तुतः तेलुगु में कहानी साहित्य का प्रादुर्भाव सामाजिक सुधार को लेकर हुआ था। स्वतन्त्रता के पूर्व भी उच्चकोटि के २०-२५ ऐसे कथाकार हुये, जिन्होंने तेलुगु कहानी को न केवल समृद्ध किया अपितु प्रतिष्ठा भी दिलायी। स्वतन्त्र्योत्तर काल में कम से कम सौ उत्तम कथाकार हुए हैं। उन सब का उल्लेख करना सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता के पूर्व से कहानी-लेखन में अपना अमिट स्थान बनाकर बराबर कहानी के विकास में योगदान देने वालों में सर्वश्री कोडवटिंगटि कुटुंबराव का नाम उल्लेखनीय है। अन्य उल्लेखनीय कथाकारों में चेलम, बुच्चि बाबू, गोपी चन्द, वट्टिकोट, आलवार स्वामी, मुनि माणिक्यम्, करुण कुमार इत्यादि हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कथाकारों में सर्वश्री रानकोंड विश्वनाथ शास्त्री, चागंटि सोमयाजुलु, कालीपट्टन रामाराव, पुराणम् सुब्रह्मण्य शर्मा, सी० एस० राव, सीता देवी, कोम्यूरो, मुप्पाल रंगनायकम्मा, वीराजी, मारुती राव, बलिवाडा, कांताराव नवीन, बीना देवी आदि ने उत्कृष्ट कहानियाँ रची हैं।

तेलुगु की श्रेष्ठ कहानियों में नीली, उरुम्मडि ब्रतुकुलु, पेवमेंट, ए मैटर ऑफ नो इम्पोर्टेन्स, केलु पिल्लै चाबु, यज्ञ आदि गिनी जाती हैं। युवा पीढ़ी के लेखक बड़ी सुन्दर रचनाएँ कर रहे हैं। सामाजिक, भावात्मक, ऐतिहासिक, व्यंग्य प्रधान आदि कहानियाँ विपुल संख्या में लिखी जा रही हैं।

आज की तेलुगु कहानी में केवल पीड़ित-शोषित मानव का ही चित्रण नहीं अपितु समाज का यथार्थ चित्रण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी इन कहानियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। आंचलिक कहानियाँ भी जनता की बोली और क्षेत्रीय बोली में लिखी गई हैं।

नाटक के क्षेत्र में तेलुगु का विकास अभूतपूर्व है। तेलुगु रंगमंच का उद्भव एक शताब्दि पूर्व हुआ था। तब से आज तक हजारों नाटक रचे गये और मंच पर अभिनीत हुए हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व अधिकांश नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक रहे। सामाजिक नाटकों की संख्या भी कम न थी, किन्तु १९४७ के बाद समस्याप्रधान नाटक, कृषक, मजदूर एवं जमींदारों के अत्याचारों को आधार बनाकर भी रचे गये। तेलुगु नाटक को एक कला मानकर उच्च शिक्षाप्राप्त परिवारों ने उसके विकास में योगदान दिया। स्वयं स्वर्गीय महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर तेलुगु नाटक देखने विजयवाड़ा गये थे।

आज के नाटककारों में राचकोंड, विश्वनाथ शास्त्री, गोल्लपूडि, मारुति राव, आत्रेय, नरस राजु, भमिडिपाटि, कोड्डालि गोपाल राव, बोम्मिडिपल्लि, सूर्या राव, पिनिशेट्टि, श्री राममूर्ति अनिशेट्टी, सुब्बाराव, पालगुम्मि

पद्मराजु, सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री आदि रेडियो रूपकों की रचना में सर्वश्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, डॉ० सी० नारायण रेड्डी, आरुद्र, बोम्मिरेड्डीपल्लि सूर्याराव, पिनिशेट्टि आदि के नाम लिये जा सकते हैं ।

तेलुगु साहित्य की अन्य विधाओं का भी आज बड़ी तेजी के साथ विकास होता जा रहा है । बाल-साहित्य, समीक्षा, गद्य-साहित्य, एकांकी, जीवनियाँ इत्यादि भी प्रतिभाशाली लेखकों द्वारा पूर्वाधिक विकास को प्राप्त हो रहे हैं । कुल मिलाकर हम यही कह सकते हैं कि तेलुगु साहित्य भारत के अन्य साहित्यों की तुलना में किसी भी दशा में कम नहीं ।

———

३
दिगंबर कविता

आधुनिक तेलुगु कविता की नवीनतम प्रवृत्ति "दिगम्बर कविता" कहलाती है। इस कविता के प्रणेता छः प्रमुख कवि जो क्रमशः नग्न मुनि, निखिलेश्वर, ज्वालामुखी, चेरंबडराजु, भैरवैय्या और महास्वप्न हैं। इन लोगों ने अपने नाम से दिगम्बर संवत् चलाया है, जिसके क्रमशः छः वर्ष हैं। प्रथम वर्ष नग्नमुनि के नाम से समाप्त हुआ और द्वितीय वर्ष निखिलेश्वर नाम से दिसम्बर १९६६ को प्रारम्भ हो चुका है।

दिगम्बर कविता का प्रथम संग्रह डेढ़ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था और द्वितीय संग्रह "दिगम्बर कवि—संग्रह २" नाम से प्रकाशित हो चुका है और इस संग्रह का प्रमोचन सन् १९६६ दिसम्बर १८वीं तारीख, रविवार, रात्रि के ठीक बारह बजे चिरंजीवी जंगाल चिट्ट (फिलहाल होटल क्लीनर हैं) के हाथों से हुआ।

दिगम्बर कवि भाग-२ में कुल तीस कविताएँ हैं। कवियों ने अपनी कविता के लिए "दिक" की संज्ञा दी है।

प्रारम्भ में अपने आशय का उद्घाटन करते हुये कवियों ने आठ पृष्ठों में एक वक्तव्य भी दिया है। उसका शीर्षक "दिगम्बर संवत" से दिया। उपशीर्षक समकालीन जीवन के प्रति दिगम्बर कवियों का दृष्टिकोण तथा "हम क्या चाहते हैं" नाम से प्रस्तुत किया है।

बंगाल में "हंग्री जनरेशन", "भूखी पीढ़ी" नाम से कविता का अत्याधुनिक आन्दोलन चल पड़ा है, जिसके प्रवर्त्तक वैस रग हैं, किन्तु प्रमुख दो ही हैं—नन्दीवन चट्टोपाध्याय तथा शक्ति चट्टोपाध्याय। ये लोग एक बुलेटिन भी प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें अपने आदर्शों की चर्चा भी करते हैं।

उनकी दृष्टि में "इतिहास नामक कोई वस्तु है नहीं। इतिहास पर गर्व करने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं है। ईश्वर केवल मांस का पिण्ड है। मनुष्य के व्यक्तिव में आत्मा का संयोग करना ही शिल्प है।"

भूखी पीढ़ी की कविता का उद्देश्य विद्रोह, क्रान्ति तथा परम्परागत सम्प्रदायों का ध्वंस ही है। इसी पीढ़ी के कवि अपने हृदय में अशान्ति को स्थान बनाये समाज के प्रति अपना आक्रोश अभिव्यक्त करते हुए उसे परिवर्तित करने की आकांक्षा रखते हैं।

उनका कहना है, शरीर के साथ मन का, हृदय के साथ मेधा का कहीं साम्य नहीं बैठता।

इस पीढ़ी के कवियों ने अपने आन्दोलन का एक प्रयत्न गतवर्ष कलकत्ते में प्रदर्शित किया। मुँह पर विभिन्न रंगों के कागजों के विविध चित्रों को लटकाये सारे नगर में जुलूस निकाला। उन कागजों के चित्रों पर लिखा था—"अपने मुँह पर के घूँघट को हटा दीजिये"। इस पीढ़ी के कवियों ने "ट्राफिक" को बन्द कर जनता की स्वतन्त्रता में रुकावट डाली थी, परिणामस्वरूप उन पर पुलिस ने मुकद्दमा चलाया था।

इस प्रकार हम लोग देखते हैं कि भूखी पीढ़ी परम्परागत सामाजिक व्यवस्था, विचारधारा तथा सम्प्रदायों के विरुद्ध अपने विद्रोह का स्वर लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत है।

दिगम्बर कवि भी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में जो गन्दगी फैली हुई है—उसका प्रक्षालन करने के हेतु अपना एक नवीन दृष्टिकोण लिये नई मान्यता स्थापित करने के विचार से अपनी कविता यानी "दिक" प्रस्तुत करते हैं।

जीवन के प्रति इन षड्कवियों का दृष्टिकोण इस प्रकार है—मानव में भौतिक कामना अथवा वांछा सहज है, स्वाभाविक है। इस कामना के साथ अचेतन रूप में स्थित तीसरा विश्व भी सत्य है। इसी भाँति मानसिक एकाकीपन भी यथार्थ है। किन्तु यह एकाकीपन मात्र ही मानव का अस्तित्व नहीं है। चेतना समन्वित हो आत्मसन्तुष्टि के साथ अग्रसर होने वाला जीवन ही वास्तव में मनुष्य का अस्तित्व है।

सच्चे मानव की कसौटी इन कवियों ने निम्न प्रकार से स्थापित की है :

कठिनाइयाँ मानवता की विषम परीक्षाएँ हैं। उस दशा में भी तलवार की धार पर चलते जो मानवता को नहीं भूलता और जो अन्तर के संगीत को सुनता है वही सच्चा मानव है।

मानव-जीवन का कोई अर्थ है और परमार्थ है। जीवन निरर्थक नहीं है; इस शून्य में कहीं न कहीं अणु मात्रा में सही आशा की किरण छुपी हुई है।

जीवन की प्रत्येक वस्तु तथा घटना के लिए—सार्थकता और निरर्थकता

दोनों हैं। इससे अपरिचित व्यक्ति अन्धविश्वास में आकर किसी पर अपना दृढ़ विश्वास बना करके कर्म सिद्धान्त के भय से पत्थरों की पूजा करने वाला ही वास्तव में नास्तिक है।

हम ऐसे मानव को अपने बुलन्द स्वर में पुकारते हैं, जो किसी प्रकार के आच्छादन के समक्ष अपना मस्तक नहीं झुकाता तथा किसी प्रकार के भय से संत्रस्त नहीं होता; ऐसे सजीव मानव-समुदाय का आह्वान करते हैं।

दिगम्बर कवियों ने अपनी पुस्तक की भूमिका में अपनी कविता के आदर्शों का जो उल्लेख किया है उनमें समाज, राजनीति, धर्म, इतिहास इत्यादि के सम्बन्ध में भी अपने दृष्टिकोण स्पष्ट किये हैं।

जीवन की व्याख्या करते हुए कवियों ने जो बातें स्पष्ट की हैं, वे बहुत ही उपयुक्त हैं।

वे कहते हैं, मनुष्य का अस्तित्व भौतिक आनन्द के साथ मन को सर्वदा सचेतन बनाकर सब में स्थान बना करके अपने आप में जीवित होना ही है।

वे जीवन की तटस्थता का विरोध करते हैं और सुझाते हैं कि मनुष्य का जीवन एक द्वीप न बने, बल्कि सहचरों में भी प्रेरणा-स्रोत बने।

इस सन्दर्भ में वे आज के मानव को पथ-भ्रष्ट बताते हैं—समकालीन वैज्ञानिक युग में व्यक्ति स्वयं अपने आप में संघर्ष कर रहा है। धन-सम्पत्ति के पीछे पागल हो सुख और लालच के पीछे कुत्ते की भाँति घूम रहा है। अपनी छाया को देख भय-विह्वल हो अकेला रह गया है। सुख प्रदान करने वाले साधन अन्त में उसकी आत्मा को बाँधने वाली बेड़ियाँ बन गयी हैं।

आखिर वे कहते हैं—अभ्युदय के पथ में मानव इस धरातल पर छूट गया है। उसकी भटकी हुई आत्मा को पकड़ सच्चा मानव बनाने की हमारी आकांक्षा है।

आज के राजनीतिज्ञों की स्थिति का परिचय देते हुए कवि बताते हैं—सड़ी, गली, जाति, धर्म, वर्ण तथा वर्ग-व्यवस्था रूपी कीचड़ के गड्ढे में गिरकर कीड़ों की भाँति राजनैतिक नेता तैर रहे हैं।

धर्म, सम्प्रदाय तथा विभिन्न राजनीतिक वादों के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं—परिणाम दशा में मानव के कल्याण के हेतु उसे देवता बनाने के विचार से भी जो धर्म और सिद्धान्त प्रचलित हुए हैं वे सब युग-परिवर्तन के साथ अपने स्वरूप और स्वभावों को भी खो बैठे हैं। राजनीति के क्षेत्र में भी जो वैविध्य है उसके भँवर में पड़कर मनुष्य को पिसते वे पसन्द नहीं करते; इसलिये वे कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक

क्षेत्र में मनुष्य को दाँव पर रखकर वाद रूपी पाँसों से छल-कपट का जुआ न खेलना चाहिये ।

समाज में आर्थिक समता लाने के लिये साम्यवाद का समर्थन करते हुए भी वैयक्तिक स्वेच्छा पर जोर देते हैं ।

इसी भाँति विश्व-शान्ति के नाम पर निरन्तर जोरदार शब्दों में भाषण देने वाले लोग अणु-अस्त्रों की परीक्षाओं के नाम पर विश्व के वायुमंडल को दूषित करने वाले प्रमुख राष्ट्रों के नेता, चाहे वे किसी वाद विशेष के समर्थक हों, उनके उन कुकृतियों के प्रति दिगम्बर कवि घृणा प्रकट करते हैं ।

साहित्य के प्रति अपनी धारणा अभिव्यक्त करते हुए वे विशुद्ध मौलिकता का समर्थन करते हैं और साहित्य के नाम पर कई टन वजन वाला जो वाङ्मय उत्पन्न किया जा रहा है उसको जलाने के लिए आवश्यक रचनाओं का स्वागत करते हैं ।

साहित्य में वर्णित मिथ्या, दंभ इत्यादि का त्याग करने की सलाह देते हुए आज की काव्य-रचना में जीवन की यथार्थता, सरलता, युग का सन्देश तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को साँस के रूप में सेवन करने वाले आधुनिक मानव के अस्तित्व का चित्रण दिगम्बर कवि चाहते हैं ।

दिगम्बर कवियों ने भावों को व्यक्त करने का जो विधान बनाया है वह प्रशंसनीय है । शब्दों के माध्यम से भावों के उद्वेग को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है वह अनोखा है, अपूर्व है । कहीं-कहीं अमूर्त भावों को मूर्त वस्तु अथवा प्राणियों के साथ उपमा देकर कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप प्रदान किया है । ऐसे स्थलों पर कवियों के वाक्य हमें कहावतों तथा मुहावरों का स्मरण दिलाते हैं—

> जैसे तृष्णा गिरगिट की भाँति लचकदार बनी बढ़ी ।
> तृप्ति-वन टुकड़े-टुकड़े हो गया ।
> अहंकार फूटकर अरिषड्वर्गों का लावा छितराया ।
> एकाकीपन दिन-प्रति-दिन ताप की भाँति घनीभूत हो गया ।
> जमाना गिरगिट की भाँति तमाशा का रंग पा गया ।

कवि ज्वालामुखी ने अपना आत्म-परिचय "पुनर्योनी-प्रवेशम्" नामक कविता में दिया है । कहते हैं—

> शताब्दियों के विकास की प्रगति पर
> अनादि से बढ़ता हुआ अनन्त मानव हूँ मैं ।
> — ... ...

सृष्टि-योनि से फिसला विचित्र विकार रूप हूँ मैं
अब भी अविकसित मानव हूँ मैं।
पंचभूत पयोधरों को निचोड़-निचोड़कर
प्रच प्राणों का पोषण कर बढ़ाया मैंने।
नाद-ब्रह्म में ब्रह्मांड को झूला बना झूला हूँ मैं
संतृप्ति रूपी इन्द्रधनुष में अनुभूतियों की
तन्त्रियों को झंकृत किया मैंने
आनन्द को आकृति दे जलाया मैंने।
उस दिन मानवता के झरने झर-झर उठे
अच्छाई के तीर सुशोभित हो उठे।
पाप-पुण्य से अतीत जगत शांति-ज्योत्स्ना को पाला
वर्ग-विहीन मानव स्वर्ग
नदियों की सभ्यता में तीर्थ हो भासित हुए।

आगे कवि कहते हैं—

हृदय-मेधा के मध्य तरलता टूटी
जल से विकास गति गगन तक बढ़ी
विश्व मेरी हथेली पर आशा बनकर नाच उठा।

यह कविता बड़ी लम्बी है। कहीं-कहीं कवि अपना आत्म-परिचय देते हुए जो वाक्य बताते हैं वे हमें सोचने, समझने और चिन्तन करने को बाध्य करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान दीजिए —

अश्रु-जल की मधुकरी माँगनेवाला युग-भिक्षुक मैं हूँ
विज्ञान द्वारा प्रसारित विष-किरण से दृष्टि खोया चक्षु मैं हूँ
अहंकार रूपी क्रास पर हास किया रक्त गुलाबी मैं हूँ

कवि ने कुछ ऐसे भी प्रयोग किये हैं जो अपनी अलग विशेषता रखते हैं; जैसे—

"मन की मस्जिद में नमाज की पुकार की आहट"

चरबन्ड राजू ने अपनी कविताओं का ध्येय बताते हुए आत्मा का महत्व इस रूप में प्रस्तुत करते हैं—

चिरकाल तक जगत् पर शासन करने वाली आत्माएँ काल की प्रतिबिंब हैं
कविता कवियों की गतियों को, रीतियों को सुनाती है।

दिगम्बर कवियों ने अपने कविता-संग्रह भाग दो के प्रारम्भ में "दिक" नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है—जैसे प्रथम संकलन में हमने अपनी कविता-प्रक्रिया को गद्य कविता नहीं माना और दूसरों के कहते हुए भी हमने उसे रोकने का विश्वास प्रकट किया। उसी भाँति द्वितीय संकलन से अपनी कविता को "दिक" का नामकरण किया है।

इन "दिक" के उपयोग का महत्व भी बताया है—बीमारी की तहों को चीर कर कास्मिक मार्ग का निर्देशन करने वाली ये "दिक" इनकी सीमाएँ मानवता के मूल्य हैं।

नमूनार्थ दो-चार कविताओं को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

मैं अपने देश में एकाकी हूँ
जब तब समक्ष खड़े हो
तलवार निकाल प्रश्न करते हैं "हाम्लेट"।
देश ने मेरे लिए जो बचा रखा
महान समस्याओं का फंदा
प्रति नित्य वह सर पै ऐंठता घूमता
फलत: कसती जाती भूख औ
बेकारी की गाँठें
उन गाँठों में
सुन्दर मुखों के फल
प्रफुल्लित पंखुड़ियों के मध्य
कटे डैनों से
असहाय दशा का विसाद
विसाद की फसलों के बीच
सूर्यमुखी सुमन की भाँति लटकने वाला
चन्द्रमा एक सफेद चमगीदड़ है।
मेरी संस्कृति ने जब मुझे लात मारा
हजारों वर्षों की प्रगति आँखों के समक्ष
मेरे विचारों के हमलों से शिथिल हो
इतिहास में कहीं स्थान न पा
समुद्र तट सारा झाऊ से भरा
नक्षत्र सब अल्यूमिनियम सिक्कों की भाँति चमकते जब
मेरे घर की खिड़की में से दूसरे समुंदर की हवा
जोर से बढ़ विश्वासों को ध्वंस करती
एक-एक पृष्ठ के पलटने पर

कुक्कुट युद्ध
कुक्कुटों की भाँति लड़ने वाले वीर
पानी में ही परस्पर सर काटने वाले
बोब्बिलि के शूर-वीर
वायु के झोंकों से बुझी दीपों की बत्तियाँ
शेष अटपटे अँधेरे में
कतार में खड़े करेंट के दीपकों में
मैं अपने देश का पराया हूँ
स्नेह न देने वाले देश में
स्नेहहीन प्रत्येक व्यक्ति एक द्वीप है ।

"—निखिलेश्वर"

४

तेलुगु का शतक साहित्य

तेलुगु का शतक साहित्य इतना समृद्ध है कि उसने तेलुगु साहित्य में अपना एक युग ही बना लिया है। इसे तेलुगु की एक विशिष्टता कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्राकृत भाषा में "सप्तशती" अथवा "सप्तसई" नाम से जो काव्य-संप्रदाय चल पड़ा है, वही हिन्दी साहित्य में "सतसई" नाम से व्यवहृत है। तेलुगु का शतक संप्रदाय भी इसी कोटि में आता है। परन्तु सतसई में जहाँ ७०० अथवा ७१३ पदों का संग्रह होता है, वहाँ शतक में १०० अथवा १०८ पदों का संकलन होता है। शतक की रचनाएँ भक्ति, नीति, उपदेशात्मक एवं शृंगारपरक भी हैं। चौथे चरण में मुकुट होता है। उसमें कवि अपने इष्टदेव, गुरु, मित्र अथवा अन्य अपने प्रियजनों को सम्बोधन करता है। सतसई की भाँति यह शतक भी मुक्तक काव्य होता है। इसमें भी एक पद से दूसरे पद का बिल्कुल सम्बन्ध नहीं होता है अपितु वे सभी पद भाव में अपने में पूर्ण होते हैं।

तेलुगु के प्रायः सभी ख्यातनामा कवि प्रारम्भ में शतककर्त्ता ही रहे हैं। यह शतक वाङ्मय बहुत समय तक अज्ञात ही रहा है। कुछ पण्डितों का विचार है कि शतक-रचना अंग्रेजी की भाव-कविता जैसी है। यह साहित्य-शाखा आज इतनी व्यापक बन गयी है कि इस पर अनेक बृहत ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें श्री वंकूरि सुब्बाराव का "शतक कवुल चरित्र" (शतक कवियों का इतिहास) और श्री वेदमु वेंकट कृष्ण शर्माजी का "शतक वाङ्मय सर्वस्वमु" उल्लेखनीय हैं। उनके अलावा श्री काशिनाथुनि नागेश्वर-राव जी के "शतक-संग्रह", श्री वीर राघव शास्त्री, श्री एलिकानि लच्चा राव, वाविल्ल प्रेस वालों के शतक-संग्रह इत्यादि भी प्रसिद्ध हैं। इससे हम इस साहित्य शाखा की समृद्धि एवं व्यापकता का परिचय पा सकते हैं। इस प्रकार के लगभग १,००० शतकों का अब तक पता लगा है। विद्वानों का कथन है कि तेलुगु में करीब २,५०० शतक रचे गये हैं। इनमें केवल ६०० शतकों पर शोध-कार्य हो पाया है।

प्राचीन समय में साहित्यिक महत्व प्राप्त काव्यों की अधिक प्रधानता रही। शतक साहित्य की एक छोटी-सी शाखा मानकर इसका अनादर ही किया गया। महाकाव्य तथा प्रबन्धकाव्य रचना को अधिक गौरव प्राप्त था। प्राचीन आन्ध्र महाकवियों की दृष्टि में शतक उल्लेखनीय कृति नहीं माना गया। परन्तु संख्या की दृष्टि से, काव्य-गुण भावना की प्रौढ़ता इत्यादि में शतक भी अन्य काव्यों से कम नहीं है। समीक्षकों ने भी इस ओर पहले ध्यान नहीं दिया। वे० वंगूरि सुब्बारावजी ने जब तक "आन्ध्र शतक कवुल चरित्र" प्रकाशित नहीं किया, तब तक वे सभी शतक आन्ध्र-जगत् के लिए अज्ञात ही रहे। परन्तु "सुमती शतक", "दाशरथी शतक", "भास्कर शतक", "नरसिंह शतक" और कालहस्तीश्वर शतक" को अधिक प्राप्त था। ये सभी स्कूलों में पढ़ाये व कंठस्थ कराये जाते थे। शृंगार, भक्ति एवं नीति शतक प्रचार में थे और उस समय मन्दिर जाते समय ग्रामीण, वृद्ध व युवक भी इनका पाठ किया करते थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से क्रमशः वह क्रम जाता रहा।

आज के युग में यह धारणा हो गई है कि वाङ्मय के माने केवल पद्य काव्य ही नहीं है। वह केवल वाङ्मय की एक शाखा मात्र है। उसके साथ अन्य शाखाओं की समुचित एवं सम्पूर्ण वृद्धि करने पर आन्ध्र वाङ्मयरूपी कल्पवृक्ष का सौन्दर्य निखर सकेगा। इस नग्न सत्य को आज के सभी साहित्यिक, समीक्षक, इतिहासकार आदि सब ने पहचाना है। सच पूछा जाए तो काव्य से भी शतक उत्तम कृति माना जा सकता है। काव्यों में कथावस्तु कवि की स्वतन्त्रता को उसी रूप में व्यक्त करने से रोक देती है। वहाँ कवि और काव्य के बीच में कथा उपस्थित रहती है। शतकों में ऐसी बात नहीं है। वह आत्म कविता पद्धति की है।

अब तक के उपलब्ध शतक साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र वाङ्मय में शतक साहित्य का आविर्भाव भक्ति प्रधान शैव सम्प्रदाय द्वारा हुआ। सच पूछा जाए तो तेलुगु का प्रथम शतक श्री यथा-वाक्कल अन्नमय्या का "सर्वेश्वर शतक" माना जाना चाहिए। परन्तु इतिहासकार श्री मल्लिकार्जुन पंडिताराध्युलु के "शिव तत्वसार" को शतक मानकर उसे ही शतक कविता का प्राथमिक गौरव प्रदान किया है। नियमानुसार शतक में सौ पद ही होने चाहिए, किन्तु वेमना के शतक की भाँति शताधिक पद होने पर भी वह शतक के अन्तर्गत गिना जा रहा है।

आन्ध्र प्रदेश में भक्ति का आन्दोलन जब तीव्रता के साथ फैलने लगा, उन्हीं दिनों शतक का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए प्रारम्भिक शतक साहित्य

भक्ति प्रधान है। शैव कवियों ने अपने शतकों की रचना भक्ति एवं धर्म प्रचारार्थ की।

क्रमशः साहित्य में भक्ति, नीति, योग-भोग, हास्य, उपदेश आदि समस्त प्रकार के विषय वर्णित होते गये। उनमें शृंगार, करुण, हास्य, अद्भुत व शान्त रसों का भी वर्णन हुआ है। शब्दालंकारों का अभाव भी नहीं है। व्याज-स्तुति, व्याज-निन्दाओं से पूर्ण भक्ति शतक भी हैं और वेदान्त प्रबोधित भी। काव्य की चित्र-कथा-कल्पना को छोड़ शेष काव्य के समस्त प्रकार के लक्षण तेलुगु शतक में आ गये। उसमें अनुपलब्ध वस्तु कोई नहीं है। यहाँ तक कि १८वीं सदी में काव्य-कविता के लक्षण भी शतक कविता में वर्णित होने लगे। विष्णुपरक—राम, कृष्ण, नृसिंह इत्यादि शतकों में दशावतार तथा शैव प्रधान शतकों में त्रिपुरासुर संहार का वर्णन हुआ है। यही नहीं, महाभारत, रामायण, भागवत् इत्यादि पौराणिक गाथाओं को भी इन शतकों ने जन साधारण तक पहुँचाया और प्रचार किया। १७वीं शताब्दी से १९वीं शताब्दी के बीच में रचे गये शतकों में देश, काल, समाज, देशी राज्यों व जमींदारों का अच्छा वर्णन मिलता है। स्वर्गीय श्री सुरवरम प्रताप रेड्डी को "आन्ध्रुल सांगिक चरित्र" (आन्ध्रवासियों का सामाजिक इतिहास) की रचना में शतकों से बहुत बड़ी सहायता मिली है। इस प्रकार इन शतकों का महत्व बहुत बड़ा है। जीवन के प्रायः समस्त क्षेत्रों का वर्णन हमें शतकों में प्राप्त होता है। इस लेख में हम एक सहस्र शतकों और उनके रचयिताओं का परिचय तो दे नहीं पायेंगे। कुछ प्रमुख शतकों व इनके कर्त्ताओं का परिचय देना पर्याप्त होगा।

१. **शिवतत्व सारम**—इसके रचयिता श्री मल्लिकार्जुन पंडिताराध्युलु प्रथम तेलुगु शतक-स्वरूप-निर्माता माने जाते हैं। इनका समय सन् ११६० के लगभग है। इस शतक का मुकुट शिव है। परन्तु कुछ पद्यों में शिवजी के काव्य नाम "महेशा", "रुद्रा", "भजा" इत्यादि अनेक पर्यायवाची शब्दों का भी प्रयोग इस शतककर्त्ता ने किया है। इस शतक का कतिपय पद्यों में शतक-लक्षण भी दिखलाई नहीं देते। इतना होते हुए भी "पंडिताराध्य चरित्र" के रचयिता श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि ने शिवतत्वसार को शतक ही माना है। कुछ आधुनिक समीक्षकों ने भी बड़ी छान-बीन के उपरान्त इसे प्रथम शतक का गौरव प्रदान किया है। इस शतक में अद्वैत मत का खंडन तथा आडम्बरपूर्ण पूजा का विरोध किया गया है और साथ ही साथ शिवगण वर्णन, भक्ति की महिमा इत्यादि विषयों पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इसी नाम से कन्नड़ में भी एक शतक है, वह इसका अनुवाद माना जाता है। श्री पालकुरिकि सोमनाथ ने यह भी लिखा है कि श्री मल्लिकार्जुन पंडिता-

राध्युलु ने कुल ४३ ग्रन्थों की रचना की। परन्तु केवल "शिवतत्व सार" ही अब तक उपलब्ध हुआ है।

२. **सर्वेश्वर शतक**—कर्ता—यथावाक्कुल अन्नमय्या (सन् ई० १२१८-१२८५) इसमें १४२ शार्दूल वृत्त हैं। कर्ता ने १३० व १४२ वें पद्यों में अपने शतक रचना-काल के सम्बन्ध में लिखा है कि वह कर्नूल जिले के दूदिकोंडा नामक ग्राम के निवासी थे। यों तो वह गोदावरी निवासी थे, लेकिन श्री शैल की यात्रा से लौटते समय पल्नाड् तालुके की एक धर्मशाला में अपना निवास बनाया और वहीं पर अपने सर्वेश्वर शतक की रचना कर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके पद्य भक्ति प्रबोधपूर्ण हैं। अधिकांश पद्य अद्वैत भावों से आत्मा अनात्मा विचारों तथा वेदान्त रहस्य तथा नास्तिकों को भी परमात्मा की ओर झुकाने में समर्थ हैं।

कुछ लोग इन्हें पालकुरिकि सामनाथ कवि का शिष्य मानते हैं। लेकिन यह कदापि संभव नहीं है। ये दोनों समस्त विषयों में भिन्नता रखते हैं। गुरु-शिष्य-सम्बन्ध का कोई अन्य प्रमाण भी प्राप्त नहीं हुआ है।

३. **वृषाधिप शतक**—कर्ता—"कवि ब्रह्म" श्री पालकुरिकि सामनाथ कवि (२२७०-२२)।

शतक कवियों में सामनाथ जी का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने द्विपद-पद विन्यास के साथ तेलुगु काव्य साहित्य के क्षेत्र में कई नयी रीतियों को जन्म दिया और विद्वत्कवियों की प्रशंसाएँ प्राप्त कीं। श्री सोमनाथ जी ने समस्त शतक लक्षण समुदाय को अपने वृषाधिप शतक में समलंकृत किया। इसलिए यह समस्त शतक साहित्य का शिरोमणि बना हुआ है।

श्री सामनाथ ने २८ ग्रन्थों की रचना की है। उनमें ७ पुस्तकें तेलुगु की, आठ संस्कृत और शेष कन्नड़ की हैं। इनमें "बसव पुराण", "पंडिताराध्युल चरित्रम्" और "वृषाधिप शतकम्" अत्यन्त मुख्य हैं। इस शतक कर्ता के जीवन से सम्बन्धित अनेक अद्भुत कहानियाँ जनपदों में प्रचलित हैं, जो इनकी भक्ति व पाण्डित्य का परिचय देती हैं।

श्री सामनाथ जी का जन्म 'पालकुरिकि' नामक गाँव में हुआ था। यह ओरुगल्लु (वर्तमान समय के वारंगल) के समीप में है। इससे स्पष्ट है कि वह तेलंगाना के निवासी थे। वह अच्छे भक्त भी थे। शैव सम्प्रदाय एवं आचारों का पालन करते हुए लोगों में शैव धर्म का प्रचार करते रहे। इनके कई शिष्य भी थे। बीच-बीच में ये श्री शैल आदि शैव तीर्थों का सेवन भी करते रहे। कुछ विद्वानों का मत है कि यह सामनाथ कृत 'वृषाधिप शतक' ही तेलुगु साहित्य का प्राचीनतम व प्रथम शतक है।

श्री सामनाथ कवि सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली थे। वह वेद-वेदांगों में पारंगत थे, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, महाराष्ट्र व संस्कृत भाषाओं में समान अधिकार रखते थे। वह षट् शास्त्रों में प्रवीण थे। इन्होंने 'बसव पुराण' और 'पंडिताराध्य चरित्र' नामक काव्यों को देशी छन्द द्विपद में रचा था। इनके 'वृषाधिप शतक' में हम सोमनाथ कवि की अनेक कविता धाराओं का परिचय पा सकते हैं। ये पुस्तकें उनकी 'बसवेश्वर' (शिव) भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। इस शतक के अधिकांश पद्य चंपक अथवा उत्पल माला।वृत्त हैं। इस शतक का मुकुट 'बसवा' अथवा 'वृषाधिपा' है। यह समस्त शतक-लक्षण समन्वित रचना है। मल्लिकार्जुन पंडित ने शिवतत्वसार द्वारा शतक के एक स्वरूप को प्राप्त किया तो दूसरी ओर वृषाधिप शतक द्वारा शतक काव्य-कामिनी सर्वालंकारशोभिता हो प्रकाशमान है। इस शतक की शैली संस्कृत समास जटिल है। इसमें कुल १०६ पद्य हैं। अनुप्रास, नियम और शब्दालंकार वैचित्र्य इसकी विशेषताएँ हैं। कवि की भक्ति अपूर्व एवं अद्भुत थी। पद-पद पर उन्होंने अपने आराध्य को पुकारा है।

४. सुमती शतक—कर्ता—बद्देना (भद्र भूपाल १३, १४ सदी)

आन्ध्र देश के आबाल-वृद्धों में विशेष रूप से प्रचार प्राप्त शतक 'सुमती शतक' है। इसके पद्य कंठाग्र पर न रखनेवाला व्यक्ति आन्ध्र भर में ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। इससे जन-साधारण में इस शतक की लोकप्रियता का परिचय पाया जा सकता है। इसका प्रत्येक पद्य सुभाषित-जैसा महत्वपूर्ण है। परन्तु इस शतक के रचयिता के सम्बन्ध में अब तक कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हुआ है। कुछ लोगों का ख्याल है कि 'सुमति' नामक किसी जैन भिक्षु ने 'आत्मनाम संबोधन' द्वारा इस प्रकार की नीतियों का उपदेश दिया है।

श्रीमान् वल्लि रामकृष्ण कवि ने अपने 'नीतिशास्त्र-मुक्तावली' नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि सुमति शतक 'भद्रभूपाल कवि' विरचित ही हो सकता है। श्री कूचिमंचि तिम्म कवि ने अपने 'सर्वलक्षण सार संग्रह' नामक लक्षण ग्रन्थ की भूमिका में इस शतक को भीम कवि कृत बताया है। परन्तु इस शतककर्त्ता के सम्बन्ध में इस समय के अधिकांश विद्वानों की राय है कि यह भद्रभूपाल रचित ही है। यह शतक सुन्दर, सरल एवं सुबोध तेलुगु में रचा गया है। भीम कवि की शैली संस्कृत जटिल समासयुक्त है।

'सुमती शतक' का प्रत्येक पद एक हीरे के टुकड़े के समान है। इसमें लोकानुभव और नीति का सुन्दर समन्यात्मक सम्मिश्रण हुआ है। उदाहरण के लिए—

"अपनी सम्पत्ति ही इन्द्र भोग है और अपना
दुःख ही समस्त जगत् की दरिद्रता है।"

"दासी का भी पुत्र क्यों न हो, जिसके पास
पैसा है, वही राजा है ।"
"प्रेम व विनयपूर्वक देने से दूध का भी पान नहीं
करते, और जबरदस्ती करने पर विषपान भी करते
हैं ।"
अच्छी पत्नी काम के समय अच्छी पत्नी सिद्ध होती
है, सेवा के समय दासी, भोजन के समय माता और
सोने के समय रंभा ।"

यही भाव इस संस्कृत श्लोक में भी है :

"कार्येषु मंत्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता,
शयनेषु रंभा ।"
"बिच्छू की पूंछ में जहर रहता है, मक्खी के सिर
में और साँप के दाँत में, पर दुर्जन के तो सारे
शरीर में विष ही विष भरा है ।"

संस्कृत का एक श्लोक है—

"वृश्चिकस्य विषं पुच्छम् मक्षिकस्य विषं शिरः
तक्षकस्य विषं दंष्टा सर्वांग दुर्जने विषं ।
"हे सुमती ! इस पृथ्वी में वचन के लिए प्राण सत्य है ।
दुर्ग का प्राण उसके वीर रक्षक होते हैं । नारी का
प्राण मान है और चिट्ठी का प्राण हस्ताक्षर होता है ।"

बद्देना या भद्र भूपाल से अपरिचित व्यक्ति आन्ध्र में आपको मिल सकते हैं परन्तु सुमती शतक के पदों से अपरिचित शायद ही कोई प्रमाण मिलेगा। दस बर्ष पूर्व तक भी सुमती शतक के प्रायः सभी पद्य ग्रामीण पाठशालाओं में बालकों से अनिवार्य रूप से कंठस्थ कराये जाते थे ।

५. वेंकटेश्वर शतक—कर्ता—ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु (ई० सं० १४०८-१५०३) । श्री अन्नमाचार्य जी के वंशज संगीत और साहित्य दोनों में प्रवीण रहे हैं । ये तिरुपति में स्थित भगवान श्री वेंकटेश्वर के सान्निध्य में वंश परम्परागत रहते आये हैं । उनमें प्रथम श्री अन्नमाचार्य थे ।

भगवान की भक्ति में लीन हो आशु रूप में वह प्रतिदिन कुछ कीर्तन बनाकर गाया करते थे । भगवान के प्रति भक्त का निवेदन ही इनके कीर्तन हैं । गीत-साहित्य में वह भक्त त्यागराज की कोटि में आते हैं ।

श्री अन्नमाचार्य जी ने "वेंकटेश्वर शतक" की रचना की है । इनमें एक

सौ चंपक माला एवं उत्पल मालावृत्त हैं। इस शतक का मुकुट "वेंकटेश्वरा" है। यह एक शृंगार प्रधान शतक है। इसमें अलिवेलु मंगा और वेंकटेश्वर की लीलाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है। सुन्दर शब्द-योजना, चमत्कार व भाव सौन्दर्य इस शतक की विशेषताएँ हैं। इनके शतक में मांडलिक पदों का प्रयोग हुआ है। भक्ति में तो ये तेलुगु के महान भक्त कवि पोतन्ना का हमें स्मरण दिलाते हैं।

६. **श्री कालहस्ति शतक**—कर्ता—धूर्जटि कवि।

श्री धूर्जटि कवि कालहस्ती के निवासी और शिव-भक्त थे। इनकी कृति 'श्री कालहस्ति शतक' नाम से विख्यात है। इनकी कविता के सम्बन्ध में 'आन्ध्र वाङ्मय का इतिहास' के लेखक ने लिखा है—"धूर्जटि की शतक रचना गंगा-धारा की तरह वेगमय है।" इस शतक के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कारण, इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। किसी में १०८ पद्य हैं, किसी में १२० तो किसी में १४२-१४८ पद्य हैं। इस शतक में ३३ नये पद्यों का समावेश हुआ है। कहीं-कहीं अल्प मात्रा में पाठ-भेद भी हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कुछ पद्य ऐसे भी आ गये हैं जो समानार्थ बतलाने वाले हैं। इस कवि का 'कालहस्ती महात्म्य' अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है।

७. **वेंकटेश्वर शतक**—कर्ता—श्री ताल्लपाक तिरुमलाचार्य। यह अन्नमाचार्य जी के द्वितीय पुत्र थे। स्वयं कवि ने अपने 'वेंकटेश्वर शतक' के अन्तिम पद्य में इस बात का उल्लेख किया है। इन्होंने भी वेंकटेश्वर शतक की रचना की है। इसके अलावा इनके और बारह ग्रन्थ मिले हैं। इन बारह ग्रन्थों में से दो शतक हैं। एक नीति प्रधान और दूसरा शृंगार रस प्रधान। दोनों का मुकुट 'वेंकटेश्वरा' है। प्रथम शतक सीस छन्द में कहा गया है। इस छन्द का यही प्रथम शतक है। बाद के शतक इसके अनुकरण पर ही बने हैं। यत्रतत्र लोकोक्तियों का अच्छा प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए—

'कधा क्या जाने सुगंध की बास ?'

८. **रंगनाथ शतक**—कर्ता—कोंड राम कवि। इस कवि ने रंगनाथ शतक की रचना की है। वेदान्त विषय होने के कारण इसका उचित प्रचार नहीं हो पाया है। शतक साहित्य-रचना में काव्य-लक्षणों का प्रवेश कर इस कवि ने एक नयी रीति को जन्म दिया है। शतक के प्रथम पद्य में इष्ट देवता की प्रार्थना की गयी है। ये तिरुमल देवरायलू के समकालीन थे। इनके गुरु नाग वेंकट रंगनाथ जी थे। इस शतक में विजयनगर साम्राज्य तथा तत्कालीन विभिन्न विषयों का वर्णन भी हुआ है। शतक में कुल १०१ पद्य हैं। मुकुट इस प्रकार है—"गंज पुरंधाम शृङ्गार कलित सोम मंगलोद्धाम श्री कलि रंगाधाम"। वेदान्त ज्ञान और शब्दालंकार बहुलता इसकी विशेषताएँ हैं।

९. **वेमन शतक**—कर्ता—वेमना (१५६५-१६२५)

शतक कवियों में वेमना के सम्बन्ध में जितनी छानबीन हुई है, उतनी शायद ही किसी अन्य शतककार के सम्बन्ध में हुई हो। इनके वंशज तथा समय के सम्बन्ध में विद्वानों में विशेष मतभेद न रहने पर भी स्थान के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं।

वेमना का जन्म रेड्डी-वंश में हुआ था। इतिहासकारों का कथन है कि वेमना कोंडवीडु सीमा के निवासी थे और उनकी मृत्यु वर्तमान अनन्तपुर जिले के कटारुपल्ले में हुई। वेमना स्थायी रूप से एक स्थान पर नहीं रहे। वह समस्त आन्ध्र में भ्रमण करते रहे। हैदराबाद के तेलंगाने में भी गये। इनके अनेक मठ आज भी वहाँ पर मौजूद हैं। आन्ध्र में तो आज भी इनके मठों में उत्सव आदि हुआ करते हैं।

वेमना ने अपने एक पद्य में अपने निवास-स्थान के सम्बन्ध में स्वयं कोंडवीडु के मूग चिंतपल्ले का उल्लेख किया है। यह स्थान वर्तमान समय के ओंगोल के समीप में पड़ता है।

वेमना के अनेक पद्यों से पता चलता है कि वे शैव योगी थे। इसलिए कुछ विद्वानों ने उक्त पद्य में कोंडवीड का अर्थ कैलास लगाया है। उस कैलास की प्राप्ति के लिए भूडाचिंता (मौन ध्यान) नामक गाँव से गुजरना पड़ता है। तभी मुक्ति मिल सकती है।

योगी वेमना कबीर की भाँति घुमक्कड़ थे। वे सदा साधु-संत, बैरागियों की संगत में रहा करते थे। इन मण्डलियों के साथ खूब देशाटन भी किया था। इसी समय वेमना ने योगाभ्यास भी किया था। वैद्यक (दवा-दारू) विद्या तथा हेमकार (स्वर्ण) विद्या भी उन्होंने सीखी थी। क्रमशः इहलोक की ओर से उनका मन पूर्णरूप से उठ गया और अन्तर्दृष्टि को प्राप्त कर सके। धीरे-धीरे अपने शिष्यों का भी संग छोड़ वे एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे और अवधूत की भाँति कौपीनधारी हो तपस्या में लीन हो गये थे।

अब तक वेमना के ५,००० पद्य उपलब्ध हैं। अनुसंधानकर्त्ताओं का विश्वास है कि और भी अनेक पद्य अभी अज्ञात हैं। उनका यह भी विश्वास है कि वेमना के पद्यों में कुछ प्रक्षिप्त भी हैं। कुछ लोगों ने अपनी तरफ से कुछ पद्य रचकर वेमना के नाम प्रसारित किये। इससे उनके वास्तविक पद्यों के अनुसंधान में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं।

वेमना के पद्य तेलुगु के सरल देशी छन्द 'आट वेलदि' और 'तेट गीत' में हैं। कबीर जैसे लोगों ने हिन्दी के सरल छन्द दोहे को अपनाया, वैसे ही तेलुगु के लिए ये दोनों छन्द सरल हैं। इसके चार पाद होते हैं और चौथे चरण

में मुकुट—'विश्वदाभिराम विनुर वेमा' होता है। अब तक वेमना के पद्यों के अनेक चरण संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और इनकी जीवनी भी कई विद्वानों ने लिखी है। अब तक वेमना के ३,००० से ३,५०० पद्य ग्रन्थस्थ हो चुके हैं।

वेमना बहुत बड़े पण्डित भले ही न हों, किन्तु अच्छे विद्वानों का सान्निध्य उन्हें प्राप्त था। उनके पद्यों में वर्णित महत्तम विषय ही हमें इसका परिचय दे रहे हैं। उनकी भाषा साहित्यपूर्ण भले ही न हो, परन्तु उनके उपदेशों में विलक्षणता है, जो आत्म-स्वरूप से अनभिज्ञ अज्ञानी लोगों को सुज्ञानी बनाने में समर्थ हैं।

तमिल भाषा-भाषियों का 'वेदं तिरुक्कुरल' माना जाता है। वैराग्य में वेमना 'वक्कुवर' (तिरुवक्कुवर) से भी श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। परन्तु वेमना के महान व्यक्तित्व को हम आन्ध्रवासियों ने पूर्ण रूप से पहचाना ही कहाँ ?

वेमना जन्मजात कवि थे। अनेक सूत्रप्राय नीतियों को सर्वसाधारण के लिए सुबोध शैली में छोटे-छोटे वाक्यों में देशी छन्दों में बिठाने में उनका सानी नहीं है। महाकाव्य के प्रणेताओं को वह सफलता प्राप्त नहीं हुई, जो इन्हें आटवेलदि छन्द की रचना में प्राप्त हुई है।

वेमना के पदों में पादांत, विराम, धारा-शुद्धि, भाव-पुष्टि इत्यादि देखते ही बनता है। उनके पद्यों को पढ़ते समय पाठक के मन में वे भाव नये विद्युत प्रवाह की भाँति हृदय में प्रविष्ट हो अज्ञान-तिमिर को दूर करने में अद्भुत काम करते हैं।

वेमना परम बैरागी थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर प्रजा में व्याप्त दुर्नीति एवं अन्धविश्वासों का तीव्र रूप से खण्डन किया। वेद, शास्त्र और पुराणों के प्रति उनकी श्रद्धा थी, लेकिन इनको आधार बनाकर अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। ऐसे लोगों को वे क्षमा नहीं कर सकते थे। इनके पद्यों में स्वर्ग-नरक, अवतार, पुरुष, देवता आदि की प्रशंसा है। परन्तु बाह्याडंबर, यज्ञ-याग उपवास, व्रत, मूर्तिपूजा इत्यादि का घोर विरोध किया है। काम्य-कर्मों का बह विरोध करते थे। 'अहं ब्रह्मास्मि' नामक अद्वैत तत्व ही उनका लक्ष्य था। पवित्र चरित्र (आत्म शुद्धि) पर इस महात्मा ने बहुत अधिक बल दिया है। वह गुरु की प्रधानता मानते थे। गुरु द्वारा मोक्ष-साधन इन्होंने सुकर माना है।

इनके पद्यों में कुछ 'कूट पद्य' भी हैं। ठीक कबीर की तरह। उनमें रहस्य भावनाएँ वर्णित हैं। इनका प्रधान छन्द 'आट वेलदि' था। इसमें वेमना ने जो प्रौढ़ता व मधुरिमा दिखाई वह और किसी कवि के लिए भी

संभव नहीं हुई । इनका प्रत्येक पद्य एक सूत्र के समान है जिसका आन्ध्र देश में घर-घर में प्रचार है । कुछ नीतिपूर्ण पद्यों का हम उदाहरणार्थ यहाँ उल्लेख कर रहे हैं—

"मनुष्य के कर्मों को क्या शकुन रोक सकते हैं ?
क्या शिरोमुंडन से कामनाएँ भी मुंडी जाती हैं ?
पत्थर (शिला-खंड) ही ईश्वर हो जाए तो वह
विश्व को ही निगल जाए ।
जाति और वंश से भी गुण ही प्रधान है ।
बिना हृदय की शुद्धि के ईश्वर की पूजा करने से
क्या लाभ ?
भाल पर अंकित चिह्नों से वह भले ही भक्त जैसे
दीखे, परन्तु उसका मुँह भेड़िये के समान है ।
क्रोध को दबाने से कामनाओं की पूर्ति हो जाती है ।"

इस प्रकार के भाव हम वेमना के प्रत्येक पद्य में देख सकते हैं । इनके पद्य इनका असाधारण लोकानुभव जाहिर करते हैं । इनकी उपमाएँ भी अद्भुत हैं । इसके अतिरिक्त वे आसानी से समझ में आती हैं ।

इस महात्मा के पद्यों में लोकोक्ति और कहावत का भी समयानुकूल अच्छा प्रयोग हुआ है । इनमें नीति-वाक्य भी देखने योग्य हैं—

"चाहे ये जीवर अच्छे भी क्यों हों—पर कुत्ता,
गाय, खरगोश, बाघ और मच्छर गज कभी नहीं
बन सकते । वैसे ही लोभी आदमी स्वभाव से
अच्छा होने पर भी वह दाता नहीं बन सकता है ।"
"दुष्ट (निम्न जाति के) व्यक्ति को घर में प्रवेश
दिया जाए तो बड़े से बड़े आदमी को भी उसके
द्वारा हानि होती है । जैसे मक्खी पेट में जाकर
तंग करती है ।"
"गधा सुगन्ध को क्या जाने और कुत्ते के पास ऊँची
बुद्धि कहाँ से आए ? वैसे ही नीच व्यक्ति ईश्वर
की उपासना करने के लिए विरक्ति कहाँ से पायेगा ?"

कुछ पद्यों में संस्कृत के श्लोकों की छाया भी दीखती है—

'शूद्रतनमुपो ये शूद्रु डगाननि
द्विजुडनुकोनुटेल्ल तेलिवि लेमि ।'
'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः ।'

वेमना ने अपने अनुभवों व अनुभूतियों को स्पष्ट रूप से कहा है, चाहे वे अश्लील भी क्यों न हों। तेलुगु साहित्य के कवियों में वेमना अपने ढंग के अकेले हैं। दूसरे से इनकी तुलना नहीं की जा सकती।

१०. **कवि चौडप्पा शतक**—कर्त्ता—कवि चौडप्पा।

इस कवि के सम्बन्ध में समुचित निर्णय करने के लिए हमें इन्हीं के पद्यों में आधार मिलते हैं। चौडप्पा ने अपने पूर्व कवियों की स्तुति की और समकालीन राजाओं की प्रशंसा। राजा रघुनाथ राय की महिमा भी इन्होंने गायी है। इससे स्पष्ट है कि वे १७वीं शताब्दी के थे। उस समय के शिलालेख आदि द्वारा इनके समय का ठीक-ठीक निर्धारण किया गया, जिसके अनुसार पता चला है कि ये १६००-१६३० के मध्य भाग में कविता करते रहे।

इन्होंने अपने शतक में आत्मसंबोधन-परक कविता कही है। शतक का मुकुट 'कुंदवरपु कवि चौडप्पा' है। 'कुंदवर' तो उनका ग्राम माना जाता है और ये उस गाँव के पटवारी थे।

इनके शतक की तीन-चार प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। एक में १११ पद्य हैं तो दूसरी में ९४ और तीसरी में ९६ ही। चौडप्पा ने अपनी रचनाओं में आत्मस्तुति भी की है। इनका प्रधान छन्द 'कंद' था। इनकी रचना के प्रधान विषय आत्मस्तुति, नीति बोध, लोभी-निन्दा, भक्ति आदि हैं। अपनी नीति की प्रशस्तता का वर्णन स्वयं कवि के शब्दों में सुनिए—

> "ऐसे व्यक्ति को हम ढूँढने पर भी नहीं पा सकते,
> जो मेरी नीति के उपदेश सुनता व पढ़ता हो,
> जिसके शरीर पर सूर्य की किरणों का प्रसार न
> हुआ हो और जो वर्षा में भीग नहीं गया हो।'
> 'शिवजी का वरदान व्यर्थ साबित हो सकता है।
> देवताओं के गुरु भी नीति-मार्ग से हट सकते हैं।
> सूर्य और चन्द्रमा भी अपने मार्ग से हट सकते हैं।
> अयोध्या के राजा रामचन्द्रजी का बाण भी
> निशाना चूक सकता है। परन्तु सरस व चतुर कवि
> चौडप्पा का पद्य कभी नीति मार्ग से विचलित नहीं
> होता।"
>
> "जो व्यक्ति दूसरों की सम्पत्ति को गाय के मांस
> के समान देखता है, जो पर-नारी को अपनी
> माता समझता है, वह मनुष्य नर नहीं दूसरा
> नारायण ही है।"

११. **कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक**—कर्त्ता—कूचिमंचि तिम्म कवि ।

इन दोनों शतकों के कर्त्ता श्री कूचिमंचि तिम्म कवि (१६९०-१७६०) थे । श्रीनाथ महाकवि के उपरान्त आन्ध्र साहित्य में इन्हीं को 'कवि सार्व-भौम' नामक उपाधि प्राप्त हुई । इन्होंने कुल १२ ग्रन्थ लिखे हैं । जिनमें कुक्कुटेश्वर शतक और भर्ग शतक नामक दो शतक भी हैं । इनके अन्य ग्रन्थों में 'सर्वलक्षण सार संग्रह', एक श्रेष्ठ लक्षण (रीति) ग्रन्थ है । 'रुक्मिणी परिणय', सारंगधर चरित्र', 'राजशेखर बिलास', 'शुद्ध तेलुगु रामायण', 'शिव लीला विलास', रसिक जन मनोभिराम', 'निला सुन्दरी परिणय' आदि भी उत्तम ग्रन्थ हैं ।

कुक्कुटेश्वर शतक का आन्ध्र में अच्छा प्रचार है । इसमें सामाजिक दुराचारों का निर्भीकता के साथ खण्डन किया गया है । भावों के आवेग और आवेश के कारण कहीं-कहीं काव्य-लक्षणों का भी अतिक्रमण हुआ है । इस शतक का मुकुट 'कुक्कुटेश' है । प्रायः मुकुट के नाम पर ही शतक का नाम-करण होता है । अपने आराध्य देव के नाम पर कवि ने यह शतक रचा है । इस शतक में कुल ९२ पद्य हैं । इष्टदेव तथा अन्य देवताओं की स्तुति, सुकवि स्तुति, कुकवि-निन्दा, दाता सप्त संतान, खल (दुष्ट), लोभी, सुजन, दुर्जन, संपदा, गरीबी आदि के वर्णन करने वाले पद्यों का इसमें समावेश है जो उस समय की सामाजिक दशा का परिचय कराते हैं ।

इस शतक की एक विशेषता यह है कि इसमें मुहावरों की भरमार है। कहावतें, लोकोक्तियों और उपमान आदि अद्भुत बन पड़े हैं । 'जातस्य मरणं ध्रुवम्', 'राज्यांते नरकं ध्रुवम्' इत्यादि इसके सुन्दर उदाहरण हैं ।

यह शतक बाद के कवियों के लिए आधार बन गया है । इसके अनुकरण पर बने अनेक शतकों में 'वेणुगोपाल शतक' इत्यादि मुख्य हैं । इस कवि का दूसरा शतक भर्ग शतक है। यह समग्र रूप से उपलब्ध है । इसमें कुल मिलाकर १०१ पद्य हैं । भर्ग शतक की शैली कुक्कुटेश्वर शतक की अपेक्षा प्रौढ़ है। यह कवि की प्रौढ़ावस्था में रचा गया है। यमक आदि शब्दालंकारों की बहुलता पायी जाती है । १८वीं शताब्दी के उल्लेखनीय शतकों में इसका भी स्थान है ।

१२. **भक्त मंदार शतक**—कर्त्ता—कूचिमंचि जग्गकवि ।

ये कूचिमंचि तिम्मकवि के तीन भाइयों में से थे । इस बात का उल्लेख जग्ग कवि ने 'अनि सिंह शैल महात्म्य' में किया है । ये विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण कर अनेक राजाओं के दरबारों में गये और कितने ही कवियों को पराजित कर इन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया । इसके 'चन्द्ररेखा विलापमु' नामक ग्रन्थ के एक पद्य द्वारा मालूम होता है कि इन्होंने 'जानकी परिणय', 'द्विपद

राधा-कृष्ण चरित्र', 'सुभद्रा विवाह', 'चन्द्ररेखा विलापमु' तथा कुछ चाटु प्रबन्ध और शतक लिखे थे। उस पद्य में 'सोमदेव राजीय' का उल्लेख नहीं हुआ है। सम्भवतः यह कृति बाद में रची गयी होगी। उपालंभ में इनसे किसी की तुलना नहीं हो सकती। चन्द्ररेखा विलाप एक निन्दात्मक काव्य है।

इन्होंने भक्त मंदार शतक की रचना की। यह कालहस्तीश्वर आदि भक्तिपूर्ण शतकों की समता कर सकने वाला शतक है। इस शतक में नीति व प्रभू (राजा) निन्दात्मक पद्य भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

१३. **रार्मलिंगेश्वर शतक**—कर्त्ता—आडिदमु सूरकवि (१७२०-१७८५)।

श्री सूरकवि ने अपना परिचय स्वयं एक पद्य में इस प्रकार दिया है—

> "कौन-सा ? —चीपुरुपल्ले।
> नाम ? सूरकवि, वंश का नाम आडिदमु।
> आपके राजा कौन ? विजयराम महाराज।
> वह क्या सरस हैं ? नहीं, राजा भोज ही हैं।"

कवि ने कई उत्तम ग्रन्थ-रत्नों का निर्माण किया। 'आन्ध्र चन्द्रालोक', 'आन्ध्र नामशेष', 'कवि संशयं विच्छेद', 'रामलिंगेश्वर शतक' और वेंकट-मंत्ति शतक' इन्हीं महाकवि रचित माने जाते हैं। इनका 'वेंकट मंत्रि शतक तो अपूर्ण है। 'रामलिंगेश्वर शतक' में १०६ सीस (एक छन्द का नाम) पद्य हैं। इस शतक का मुकुट 'रार्मलिंगेश रामचन्द्र पुरवास' है। इसके कुल-देवता रामलिंगेश्वर स्वामी थे। इसलिए कवि ने अपनी समस्त कृतियाँ अपने आराध्य देव को समर्पित की है। इस शतक में नीति, भक्ति इत्यादि के साथ उस समय के जमींदारों के अत्याचारों का भी वर्णन किया गया है। संदर्भ के अनुसार हास्यरस पूर्ण व्यंग्योक्ति तथा कहावतों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

१४. **कृष्ण शतक**—कर्त्ता—नृसिंह कवि।

आन्ध्र देश में सुमती व वेमना के बाद इसी नृसिंह कवि कृत 'कृष्ण शतक' का विशेष रूप से प्रचार है। इस शतक का मुकुट 'कृष्ण' हैं। कवि ने तेलुगु के महाकवि पोतना और श्रीनाथ की कविता-रीतियों का अनुकरण किया है। नृसिंह कवि बहुत बड़े विद्वान थे, इसलिए इनके पद्यों में छन्द-दोष, प्रास-भंग, व्याकरण-दोष इत्यादि पाये जाते हैं।

१५. **दाशरथी शतक**—कर्त्ता—कंचर्ल गोपन्ना।

यह सत्रहवीं शताब्दी में हुए थे। इनका दूसरा नाम 'रामदास' है। आन्ध्र में महान भक्तों में ये भी एक थे। पोतना और त्यागराज के बाद भक्ति में इनका नम्बर आता है। इन्होंने रामचन्द्रजी पर एक शतक लिखा है। वही दाशरथी शतक नाम से प्रसिद्ध है। शतक का मुकुट 'दाशरथी करुणापयोनिधी'

है। इस शतक के प्राय: सभी पद्य भक्ति एवं नीतिपरक हैं। इस शतक का भी आन्ध्र में अच्छा प्रचार है। श्री रामचन्द्रजी आन्ध्र देश के आराध्य देव हैं। रामदास तो श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपनी संपूर्ण भक्ति को मानो शतक के इन पद्यों में उड़ेल ही दिया है।

इनके अलावा अन्य भी कितने ही शतककार हुए हैं। हमने ऊपर केवल ऐसे ही शतकों का परिचय दिया है, जिनका आन्ध्र देश में अधिक प्रचार है अथवा उनके कर्त्ता लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। बताया जाता है कि महाकवि पोतना ने भी 'नारायण शतक' की रचना की है। यह विवादास्पद विषय होने के कारण उस शतक पर मैंने विचार नहीं किया। अन्य शतकों में श्री एनुगुलक्ष्मण कवि कृत 'भर्तृहरि शतक' (१७२५), तथा इसी नाम का श्री पुष्पगिरि तिम्मना कृत शतक (१७५०) भी प्रसिद्ध हैं।

अन्य शतकों में सीतापति शतक, जानकीराम शतक इत्यादि प्रसिद्ध हैं। परन्तु अनेक कवियों ने एक ही नाम के शतक भी लिखे हैं। तेलुगु में उपलब्ध होने वाले केवल शतक व शतककर्ताओं के नामों का उल्लेख मात्र भी किया जाए तो लगभग एक पोथा बन जाएगा। शतक के प्राय: समस्त प्रमुख विषयों पर मैंने संक्षिप्त रूप से यथाशक्ति प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसी में समस्त तत्वों का समावेश आ गया है। अन्य शतकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। परन्तु शतक वाङ्मय में उनका प्रतिनिधित्व कर सकने वाला स्थान नहीं है। यह शतक साहित्य १२वीं शताब्दी से लेकर आज तक बराबर प्रवाहित होता जा रहा है। यहाँ तक कि १९५५ में भी तीन-चार शतक प्रकाशित हो चुके हैं। जब तेलुगु के अन्य अज्ञात शतकों का भी पता लग जायगा, तो तेलुगु का शतक-साहित्य और भी जगमगा उठेगा।

५

आधुनिक तेलुगु उपन्यास

आधुनिक युग में उपन्यास अपनी प्रभावोत्पादकता तथा रोचकता के कारण साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गया है। उपन्यास में मानव जीवन की मीमांसा होती है और उसमें मानव-मन की आंतरिक अनुभूतियों का विश्लेषण होता है। मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप में उद्घाटन करके वह आनन्द प्रदान करता है। यही कारण है कि यह प्रक्रिया मानव-जीवन के अधिक निकट है।

यों तो भारतीय साहित्य के लिए उपन्यास पाश्चात्य साहित्य की देन है। किन्तु भारतीय वातावरण में इस प्रक्रिया का आशातीत विकास होता जा रहा है।

तेलुगु का प्रथम उपन्यास स्वर्गीय वीरेशलिंगम पंतुलु कृत 'राजशेखर चरित्र' माना जाता है। यह उपन्यास अंग्रेजी के सुविख्यात लेखक गोल्ड-स्मिथ के 'बिकार ऑफ बेक्फील्ड' के अनुकरण पर रचा गया है। पंतुलुजी ने उपन्यास की वस्तु और पात्रों में ही नहीं अपितु वातावरण की सृष्टि में भी भारतीयता लाने का सफल प्रयत्न किया; अतः यह एक प्रकार से रूपान्तर होते हुए भी मौलिक प्रतीत होता है।

यह उपन्यास आन्ध्र देश में इतना लोकप्रिय हुआ कि इससे प्रभावित हो एक अंग्रेज विद्वान ने पुनः अंग्रेजी में 'फारचून्स ह्वील' नाम से इसका रूपान्तर किया। 'लन्दन टाइम्स' ने इस रूपान्तर की बड़ी प्रस्तुति की। मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दू' ने लिखा था—'राजशेखर चरित्र' ने तेलुगु साहित्य में एक नये युग का शुभारंभ किया है। इस उपन्यास में वर्णित बैरागी की स्वर्ण विद्या, सुब्रह्मण्यम् की परिहास बुद्धि और कृष्णगजपति की उदारता अविस्मरणीय हैं। शैली मनोहर एवं सरस है। घटनाओं की रोचकता के कारण अन्त तक पाठक में औत्सुक्य बनाये रखने में यह उपन्यास

सफल रहा। समाज सुधारवादी दृष्टिकोण को लेकर इस उपन्यास का प्रणयन हुआ है।'

उन्हीं दिनों में श्री खंडविल्लि रामचन्दुडु ने 'धर्मवती विलास', 'मालती राघवमु' और 'लक्ष्मी सुन्दर विजयमु' नामक तीन उपन्यास रचे। ये तीनों 'चिन्तामणि' पत्रिका द्वारा पुरस्कृत हुए हैं।

प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास :

श्री वीरेशलिंगम पंतुलु के बाद श्री चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम ने न केवल तेलुगु उपन्यास को अपनी अनुपम प्रतिभा द्वारा समृद्ध किया अपितु उसे विविधता, व्यापकता एवं लोकप्रियता भी प्रदान की। आपने 'रामचन्द्र विजयमु' नाम से अपना प्रथम मौलिक उपन्यास प्रकाशित कर 'चिन्तामणि' का पुरस्कार प्राप्त किया। इसमें आन्ध्र देश का जनजीवन प्रतिबिंबित हुआ है। तत्कालीन आन्ध्र समाज का इसे दर्पण कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसके पश्चात् आपने क्रमशः 'हेमलता', 'अहल्या बाई' और 'कर्पूर मंजरी' नाम से तीन उपन्यासों का प्रणयन किया। ये तीनों चिंतामणि के प्रथम पुरस्कार से सम्मानित हुए। इनमें 'हेमलता' व 'अहल्या बाई' ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इस प्रकार चिलकमर्ति जी ने सामाजिक उपन्यासों के साथ ऐतिहासिक उपन्यासों का भी श्रीगणेश किया। आप का 'सौन्दर्य तिलक' पौराणिक कथा से सम्बन्धित उपन्यास है। आप के उपन्यासों में 'रामचन्द्र विजयम्' के पश्चात् 'कर्पूर मंजरी' विशेष लोकप्रिय हुआ हे। 'गणपति' आपका हास्य रस प्रधान उपन्यास है। इसका प्रत्येक वाक्य पढ़कर पाठक हँसी के मारे लोट-पोट होता जाता है। शिष्ट हास्य का पोषण होने के कारण इसे सर्वत्र समादर प्राप्त हुआ हे। आप के उपन्यासों की लोकप्रियता का मूल मंत्र कथोपकथन में कोशल, मनोहर शैली तथा स्फुट हास्य है। आपकी भाषा निर्दोष एवं प्रभावयुक्त होती है। वातावरण की सजीवता, भावाभिव्यंजन में चुटीलापन आपकी अन्य विशेषताएँ हैं। 'शापमु' कलिंगदेश से सम्बन्धित एक और उपन्यास है। आप एक कुशल मौलिक उपन्यासकार ही नहीं अपितु एक अच्छे अनुवादक भी हैं। बंगाल के यशस्वी लेखक रमेशदत्त कृत 'लेक आफ पाम्पस' का आपने 'सुधा-शरत्चन्द्र' नाम से तेलुगु में रूपान्तर किया है। आपकी तुलना अंग्रेजी उपन्यासकार 'स्काट' से ही की जाती है।

उपन्यास की बढ़ती लोकप्रियता को देख अनेक पुस्तक प्रकाशन संस्थाओं ने उपन्यास प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और साथ ही उत्तम कृतियों को पुरस्कृत कर प्रोत्साहित भी किया। 'विज्ञान चन्द्रिका ग्रन्थ मंडली' नामक

पुस्तक प्रकाशन संस्था ने कई एक उत्तम ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित किये । उनमें श्री भागराजु नारायणमूर्ति कृत 'विमला देवी' और 'चन्द्रगुप्त', श्री वेलाल सुब्बाराव द्वारा विरचित 'रानी संयुक्ता' और श्री केतवरपु वेंकट शास्त्री का लिखा 'रायचूर युद्धमु' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । श्री वेंकट शास्त्री के अन्य उपन्यासों में 'अग्रहारमु', 'पूर्णानन्दमु' और 'इच्छिनी कुमारी' विख्यात हैं । उपर्युक्त उपन्यासों में शिल्प की प्रमुखता है, भाषा निर्दोष है, शैली में गति होने के कारण ये पाठकों के प्रिय हो गये हैं ।

राजनैतिक चेतना का प्रभाव :

देश में स्वतन्त्र आन्दोलन जोर पकड़ने लगा । उसका प्रभाव जन-मानस पर ही नहीं अपितु साहित्य पर भी परिलक्षित होने लगा । आन्ध्र के सुप्रसिद्ध देशभक्त एवं समाज-सुधारक श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु ने 'मालपल्लि' (हरिजन बस्ती) नाम से एक अत्युत्तम उपन्यास प्रस्तुत किया । इसमें राज-नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं पर सम्यक् प्रकाश डाला गया । गाँधी जी के आगमन से देश में जो राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई, उसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक मान्यताएँ बदलने लगीं । ऐसी स्थिति में गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों में हरिजनोद्धार का कथावस्तु बनाकर लक्ष्मीनारायण पंतुलु जी ने उपयुक्त उपन्यास की सृष्टि की । भाषा, शैली, व्यवहार, विचार-धारा, वातावरण इत्यादि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास पूर्णतः तेलुगुपन को लिये हुए है । इसकी शैली ठेठ देहाती और भाषा आम बोलचाल की है । कथोपकथन में स्वाभाविकता और सहज माधुर्य पढ़ते ही बनता है ।

चमार भगत रामदास (संघदास) का पात्र लेखक की अपूर्व सृष्टि है । उसका चरित्र पवित्र है । सहनशीलता, अदम्य आत्मविश्वास और अपने हकों के लिए लड़ने की प्रवृत्ति ने उसे एक सच्चा देशभक्त बनाया है । उपन्यास में यत्र-तत्र जेल-जीवन की कठिनाइयों, अधिकारियों के अमानवीय व्यवहार, दलित जातियों पर उच्च वर्ण वालों के रोमांचकारी अत्याचार इतने सजीव बन पड़े हैं । कि उपन्यास के पढ़ते समय तत्कालीन समाज का चित्र हमारे सामने प्रत्यक्ष होने लगता है । इस प्रकार यह उपन्यास तेलुगु साहित्य का कंठहार बना हुआ है ।

उन्नवजी से प्रेरणा पाकर कई लेखक इस दिशा में अग्रसर हुए । उनमें श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का स्थान प्रथम है । सत्यनारायणजी ने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे और आज भी लिखते जा रहे हैं । आपका विशालकाय उपन्यास 'वेयि पड़गलु' (सहस्र फण) में आन्ध्र देश के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है । लेखक

की सनातन आर्य धर्म और वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति गहरी आस्था है। आस्तिकता, धर्मपरायणता एवं प्राचीन मान्यताओं का प्रतिपादन करते हुए नवीनता को लेखक ने अग्राह्य माना है। इसमें धर्मराव का आदर्श चरित्र 'गिरिका' के द्वारा देवदासी प्रथा के मूल में स्थित सदाशयता तथा 'मंगम्मा' पात्र के द्वारा वेश्या के प्रति भी तिरस्कार के स्थान पर अनुकम्पा के भाव प्रस्तुत किये हैं। सत्यनारायण की शैली पांडित्यपूर्ण, साहित्यिक एवं प्रवाहमान है। ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में उनकी शैली और भी अधिक निखरी है। यह उपन्यास आन्ध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत हुआ है।

एकवीरा—सत्यनारायणजी के उपन्यासों में विशेष लोकप्रिय कृति 'एकवीरा, है। उपन्यास कला के समस्त तत्वों का इसमें सम्यक निर्वाह हुआ है। कथावस्तु के संगठन में पात्रों की सृष्टि में, वार्त्तालाप के संयोजन में, भावों के प्रदर्शन में लेखक ने अनुपम कौशल का परिचय दिया है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो मधुरा की पृष्ठभूमि पर रचित है। वातावरण की सजीवता इस उपन्यास को अधिक लोकप्रिय बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

चेलियलिकट्ट (सिन्धु की वेला)—आपका एक उत्तम सामाजिक उपन्यास है। रचना-कौशल और पात्रों के मानसिक विश्लेषण में लेखक को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। आपके अन्य उपन्यासों में 'धर्म चक्रमु', 'वीर वल्लडु', 'तेरचि राजु', 'कडिमि चेट्टु', 'मा बाबू', 'हा हा हूँ हूँ', 'स्वर्गानिकि निच्चेनलु', 'अश्वमेध', 'अन्तरात्मा', 'देवतलयुद्धं', 'धूम रेख', 'पुलुल सत्याग्रहं', 'बद्दन्न सेनानि', 'प्रोयु लुम्मेद', 'विष्णु शर्मा इंग्लीषु चदुवु', 'समुद्रपु दिब्ब' आदि हैं।

श्री अड़वि बापिराजु बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार हैं। उनकी कृतियों में शिल्प की प्रधानता और कला-पक्ष का निखार देखने योग्य है। भाषा में काव्यत्व और वार्त्तालाप में नाटकीयता आपकी अन्य विशेषताएँ हैं। आपने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यास रचे। 'हिम बिन्दु' और 'गोन गन्ना रेड्डी' ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जो क्रमशः शातवाहन तथा काकतीय साम्राज्य के वैभव का सजीव चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। इनमें यथार्थ और कल्पना का गंगा-जमुना संगम हो गया है।

बापिराजु की ख्याति का कारण उनका 'नारायण राव' नामक सामाजिक उपन्यास है। इनमें यात्रा सम्बन्धी विषयों के साथ आन्ध्र का जनजीवन चित्रित है। आन्ध्र की जीवन-सरणी का प्रतिबिम्ब जिन थोड़े से उपन्यासों में हुआ है, उनमें 'नारायण राव' भी एक हैं। यह उपन्यास आन्ध्र-विश्वविद्यालय

द्वारा पुरस्कृत हुआ है। आपके अन्य उपन्यासों में 'मधुर वाणी', 'कोनंगी', 'जाजि मल्लि', 'नरुडु', 'तूफान' आदि प्रसिद्ध हैं।

सुवर्ण युग के कुछ पन्ने :

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचनाओं में श्री नीरि नरसिंह शास्त्री सिद्धहस्त हैं। आपने आन्ध्र के इतिहास से सम्बन्धित तीन महायुगों का परिचय कराते हुए क्रमशः 'नारायण भट्टु', 'रुद्रम देवी' और 'मल्ला रेड्डी' प्रस्तुत किये। ये चालुक्य, काकतीय और रेड्डी राजाओं के राज्य वैभव और आन्ध्र की संपन्नता का परिचय देते हैं। साथ ही राजनैतिक उलझनों, कुतंत्रों के साथ आन्ध्र की सामाजिक रीति-नीति व धर्म-कर्मों का भी। लेखक के गहन अध्ययन, अनुशीलन एवं अनुसंधान का परिणाम उपर्युक्त उपन्यास हैं। उपन्यासों के काल्पनिक अंश को हटा दें तो इतिहास मात्र बचा रहेगा। पात्रों के मानसिक विश्लेषण और वातावरण की सजीवता में लेखक ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। पंडिताऊ भाषा खटकती है।

तेलुगु में ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी परम्परा है। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं के साथ मनोरम कल्पना और भावना का समावेश करके तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है। इस श्रेणी के उपन्यासों में डॉ० कावर्ले नरसिंहम् कृत 'कनकाभिषेकमु' और 'रघुनाथरामुलु', श्रीमति मल्लादि वसुंधरा द्वारा रचित 'तंजावूरि पतनमु' और 'सप्तपर्णी', श्री धूलिपाल श्री राममूर्ति का लिखा 'भुवन विजयमु', तेन्नेटि सूरि कृत 'चेंगीज खाँ' प्रशंसनीय हैं।

समस्यात्मक उपन्यास :

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय समाज में परिवर्तन होने लगा। आर्थिक अव्यवस्था, राजनैतिक उलझन, धार्मिक जकड़बंदियाँ, नैतिक मापदण्डों में नये दृष्टिकोण से पुनर्विचार—इत्यादि ने जनजीवन को अस्थिर बना दिया। इन विकृतियों से पूर्ण सामाजिक जीवन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के अभिप्राय से विचारशील मेधावी लेखकों ने समाज का अध्ययन किया। परिणामस्वरूप विभिन्न दृष्टिकोण से मानव-जीवन को केन्द्र बनाकर समाज का मूल्यांकन करने वाले उपन्यासों का प्रणयन हुआ। ऐसे लेखकों में श्री कुटुम्बराव, गोपीचन्द, बुच्चिबाबु, जी० वी० कृष्णराव आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। श्री कुटुम्बराव के उपन्यासों में 'चदुवु', 'वारसत्वं', 'प्रेमिंचिन मनिषि', 'पंचकल्याणि', जीवितम्', 'आडजन्म', 'कुलंलेनि पिल्ल', 'लेचिपोयिन मनिषि', 'कोत्त कोडलु', 'कोत्त अल्लुडु' इस श्रेणी के उत्तम उपन्यास हैं। सामाजिक व्यवस्था के चौखट में मनुष्य अपने विचारों को

जब्त करके कैसे खुद बन्दी बने हुए हैं और उनसे मुक्त होने के लिए संघर्ष करते हुए मानव अपने आशयों की पूर्ति के लिए कैसे प्रयत्नशील हैं, सामाजिक रुग्णता से पीड़ित मानव स्वस्थ समाज के निर्माण में कैसे निरत है और इस संक्रांति काल में मानव की कैसी दशा होती है—इन समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक व्यवस्था में नारी के उत्थान और पतन का भी समग्र चित्र कुटुम्बरावजी ने अपनी कृतियों में अंकित किया है ।

गोपीचन्दजी ने अपने विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा अपने उपन्यासों के माध्यम से भावात्मक क्रांति का आह्वान किया है। वे एक लेखक ही नहीं बल्कि विचार एवं तत्ववेत्ता भी थे। अतः पात्रों के चरित्रों के चित्रण में तात्विक दृष्टि से आपका 'असमर्थुनि जीव यात्र' विशेष जनप्रिय हुआ है। 'चीगटि महुलु' नामक उपन्यास में आपने अपने पिता त्रिपुरनेनि रामस्वामी के जीवन के साथ तत्कालीन आन्ध्र देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दशा का सुन्दर चित्र खींचा है। आपने पंडित परमेश्वर शास्त्री की 'वीलुनामा' नामक उपन्यास को हाल ही में साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अन्य उपन्यासों में 'परिवर्तन', 'पिल्ल तेम्मेर', 'अंतिम विजयं' आदि मुख्य हैं।

गोपीचन्द की श्रेणी के लेखकों में श्री जी० वी० कृष्ण राव की गणना होती है। आपने तेलुगु को सुन्दर उपन्यास प्रदान किये। उनमें 'कीलु बोम्मलु', 'चैत्र रथं', 'राम सेवलु' और 'पापि कोंडलु' प्रख्यात हैं। श्री उत्पल लक्ष्मण राम कृत 'अतडु'—'आमे' (वह और उसकी) पत्र-प्रणाली पर रचित एक सुन्दर मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें दो विभिन्न मनोवृत्ति वाले दंपति का सहज मानसिक विश्लेषण हुआ है।

बुच्चिबाबु ने 'चिवरकु मिगिलेदि' (जो शेष होगी) नाम से नवीन शैली में एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास का प्रणयन किया। यह अपनी शैली की विशिष्टता, चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिकता, सजीव भाषा और अभिव्यक्तीकरण चमत्कार के लिए विशेष प्रख्यात हुआ है। मानव-मन की अचेतन भावनाओं की रूप-कल्पना करके मनुष्य के व्यक्तित्व और सच्चे रूप का प्रतिनिधित्व कराने वाले अनेक उपन्यास तेलुगु में आये। उनमें श्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री कृत 'अल्प जीवि', श्री पिनिशेट्टि श्रीरामुलु द्वारा विरचित 'दत्तत' और 'ममता', श्री पोतुकूचि साम्बशिवरावकृत 'उदय किरणालु', इच्छापुरपु जगन्नाथ राव कृत 'गुलाबी मुल्लु' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

विद्रोह का स्वर :

श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम ने सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह का झंडा लेकर तेलुगु साहित्य में एक बड़ी क्रांति उपस्थित की। नर और नारी के सम्बन्धों पर अपने क्षोभ प्रकट करते हुए प्राचीन काल से नारी के प्रति जो अन्याय होता आ रहा है, उसे व्यंग्यात्मक कृतियों द्वारा दिखाया और उनकी खिल्ली उड़ायी। आपके उपन्यासों की कथावस्तु अन्धविश्वास, आर्थिक पराधीनता, यौनदासता, नारी की स्वेच्छाहीनता, समाज की रीति-नीति इत्यादि के प्रति असंतोष के साथ विद्रोह की भावना है। इनके चित्रण में आपने 'देवमिच्चिन भार्य', 'मैदानमु', 'कन्नीटि काल्व', 'मा कर्ममिट्ला कालिंदि', 'शशिरेखा', 'जीवितादर्श' आदि उपन्यास लिखे। 'जीवितादर्श' में एक प्रकार से लेखक का जीवन प्रतिबिंबित हुआ है। एक विलासी व्यक्ति भोग-विलास से ऊब कर अन्त में संयम का पाठ पढ़ता है और संन्यासी होता है। चलम की शैली में जादू है जो पाठक को अन्त तक अपने साथ खींच ले जाती है। भाव-व्यक्तीकरण का अद्भुत कौशल और अनुभूतियों को उसी रूप में अभिव्यक्त करने की सरस व सजीव भाषा चलम की अनुपम संपत्ति है। वे एक शैलीकार हैं। तेलुगु साहित्य के 'फ्राइड' माने जाते हैं।

चलम का अनुकरण करते हुए लेखकों का एक दल ही तैयार हो गया है। उनमें धनिकोंडा अनुमंतराव, रावूरी भरद्वाज, श्रीमती लता के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। धनिकोंडा के उपन्यासों में 'मगुव मनसु' और 'जगदेक सुन्दरी क्लियोपात्रा' और श्रीमती लता के उपन्यासों में 'एडारि पुव्वुलु', 'वन किन्नेर', 'राग जलधि', 'वारिज', 'पथ विहीन', 'जीवन स्रवंति', 'चरित्र शेषुलु' आदि प्रसिद्ध हैं।

तेलुगु उपन्यास वस्तु की विविधता की दृष्टि से समृद्ध तो है, साथ ही रसों की दृष्टि से भी कम समृद्ध नहीं है। तेलुगु में विशेष हास्य का पोषण करने वाले असंख्य उपन्यास रचे गये हैं। उनमें श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्रीकृत 'बारिस्टर पार्वतीशम्' का स्थान अद्वितीय है। इस में एक सनातन धर्मावलंबी युवक की विलायती यात्रा का रोचक वृत्तांत हास्य प्रधान शैली में वर्णित है। उपन्यास आद्योपान्त हास्यरस से ओतप्रोत है। यह एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इस वर्ग के अन्य उपन्यासों में श्री मुनिमाणिक्यम् का 'उपाध्यायुडु', श्री जलसूत्रम् रुक्मिणीनाथ शास्त्री कृत 'देवय्या' उल्लेखनीय हैं।

राजनैतिक आन्दोलनों का प्रभाव भी तेलुगु साहित्य के अन्य अंगों पर जैसा परिलक्षित होता है वैसा प्रभाव उपन्यासों में भी देखा जा सकता है।

सभी प्रकार की राजनैतिक विचारधाराओं तथा वादों की पुष्टि में जो उपन्यास आये, उनमें महीधर जगन्मोहन राव कृत 'रथ चक्रालु', 'ओनमानु', 'दवानलमु' और 'कुत्तल वतेन' विशेष प्रख्यात हैं। वट्टिकोट आल्वार स्वामी कृत 'प्रजल मनिषि' तेलंगाना में निजामशाही के विरुद्ध विप्लव और जागृति का परिचय कराता है।

अन्य युवा पीढ़ी के लेखक भी बड़े ही विश्वास के साथ इस क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। शारदा ने अल्पायु में ही 'एदि सत्यं', 'मंचि चेडु', 'अपस्वरालु' नाम से तीन सुन्दर सामाजिक उपन्यासों का प्रणयन किया है। अन्य उपन्यासों में बलिवाड़ कान्ताराव का 'दगा पड़िन तम्मुडु', पोरंकि दक्षिणामूर्ति कृत 'निवेदन' और 'संघ जीवुलु', शिगराजु लिंगमूर्ति विरचित 'रंगुल मेड़', मंजुश्री का 'ऋणानु बंधम्', घटिष्ट कृत 'केरटालु', उपश्री का 'ज्वलित ज्वाला', माड़भूषि के 'तीरनि बांधव्यालु' और 'बोधवि', इसुकपल्लि लक्ष्मी-नरसिंह शास्त्री कृत 'मंचु तेरलु' और 'संघ जीवुलु', एन० आर० चन्दूर कृत 'शिक्षा', राघव कृत 'हेम रेखलु' और गोल्लपूडि मारुतीराव के एक दर्जन के करीब उपन्यास इस परम्परा को परिपुष्ट बना रहे हैं।

महिला लेखिकाओं का योगदान भी तेलुगु उपन्यास में अविस्मरणीय है। नारी-समस्याओं के चित्रण के साथ नारी दृष्टि से समाज का मूल्यांकन लेखिकाओं द्वारा नयी रीति में हुआ है। कुछ लेखिकाओं ने ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यास भी लिखे हैं। इन लेखिकाओं के उपन्यासों में श्रीमती जयंती सूरम्मा का 'सुदक्षिणा चरित्रमु', पुल्लुगुर्ति लक्ष्मी नरसमांबा कृत 'सुभद्रा', 'योगेश्वरी' और 'अन्नपूर्णा', और कनुपर्ति वरलक्षम्मा कृत 'वसुमति', डॉ० पी० श्रीदेवी कृत 'कालातीत व्यक्तुलु' मालती चन्दूर का 'चेदल पुरुगु', लक्ष्मी रघुराम का 'धन्य जीवुलु', के० रामलक्ष्मी कृत 'मेरुपु तीगे', 'अवतलि गट्टु', मुप्पाल रंगनायकम्मा के 'कृष्णवेणी' और 'बलि पीठमु', कोडूरि कौसल्यादेवी कृत 'चक्र भ्रमणमु', 'शंखुतीर्थमु' और 'धर्म चक्रमु' डि० प्रमीला कुमारी कृत 'तेगिन तीगलु' उल्लेखनीय हैं। अन्तिम तीनों लेखिकाओं के उपन्यास 'आन्ध्र प्रभा' साप्ताहिक पत्र द्वारा चलायी गयी उपन्यास प्रतियोगता में पुरस्कृत हैं।

इस प्रकार आज तेलुगु उपन्यास प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अतः हम विश्वास कर सकते हैं कि तेलुगु उपन्यास का भविष्य उज्ज्वल है।

६

तेलुगु नाटक साहित्य

तेलुगु नाटक साहित्य का इतिहास १०६ वर्ष पुराना है। वैसे १६वीं शती में ही तेलुगु नाटक के अस्तित्व का प्रमाण "लक्षण सार संग्रह" काव्य से प्राप्त होता जाता है। १४वीं शताब्दी में श्रीनाथ द्वारा रचित "क्रीडाभिरामम्" एक सफल वीथि नाटक है। १८७० में धारवाड़ में स्थापित "आप्तेकर हिन्दू ड्रमेटिक कंपनी" ने आन्ध्र के विभिन्न केंद्रों में ताड़पत्रों के पण्डालों में हिन्दी नाटकों का अद्भुत प्रदर्शन किया। सर्वप्रथम इसी कम्पनी में शीशे के दीप, धक्-धक् चमकने वाले हार, विभिन्न रंगीन दृश्यों वाले परदे इत्यादि अपूर्व उपकरणों का प्रयोग करके प्रेक्षकों में नाटक के प्रति अभिरुचि जागृति की। उनकी देखा-देखी आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में नाटक मण्डलियां स्थापित हुईं। असंख्य पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों का प्रदर्शन किया। इन नाटकों के द्वारा अनेक कुशल अभिनेता एवं अभिनेत्रियाँ सामने आयीं और बड़ी द्रुत गति के साथ तेलुगु रंगमंच का विकास होने लगा।

विशेषकर राजमन्ड्री, मछलीपट्टणम्, विजयवाडा, गुटूर, नेल्लूरु, बल्लारी आदि शहरों में स्थापित नाटक कम्पनियों ने तेलुगु नाटक एवं रंगमंच के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। बल्लारी में सरस विनोदिनी सभा के नाम से एक नाटक समाज की स्थापना करके स्वर्गीय धर्मवरम् कृष्णमाचार्युलु ने असंख्य अंग्रेजी, संस्कृत व तेलुगु नाटकों का प्रदर्शन कराया।

तेलुगु रंगमंच में बल्लारी राघवाचार्य के आगमन से एक अपूर्व क्रांति पैदा हुई। श्री राघवाचार्य ने "शेक्सपियर" के कई नाटकों का प्रदर्शन बल्लारी मद्रास, विजयवाडा आदि केन्द्रों में ही नहीं बल्कि लंदन में भी प्रदर्शित करके प्रेक्षकों से प्रशंसा प्राप्त कर ली है। आन्ध्र के महानटों में इनका स्थान सर्वप्रथम माना जाता है। इनके द्वारा अभिनीत नाटकों में दुर्योधन, कंस, हिरण्यकश्यपु आदि पात्र आज भी उनके यश और अभिनय कुशलता के अद्भुत उदाहरण माने जाते हैं।

तेलुगु नाटक के इतिहास में "सुरभि नाटक कंपनी" का योगदान अविस्मरणीय है। नाटक कला को ही अपना पेशा बनाकर परिवारों के साथ गाँव-गाँव में जाकर इस कम्पनी ने नाटकों का प्रदर्शन किया। इस कम्पनी का इतिहास भी एक शताब्दी का है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ तेलुगु नाटक साहित्य में भी अभूतपूर्व क्रांति हुई। इस आन्दोलन के प्रभाव से "रोशनारा", "रसपुत्र विजय", "राणा प्रताप", "दुर्गादास", "राजसिंह", "शिवाजी", "चन्द्रगुप्त", "मेवाड़ पतन", इत्यादि असंख्य नाटक प्रकाश में आये। दामराजु पुण्डरीकांक्ष ने "गाँधी विजयम्" नाम से राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत एक नाटक लिखा, जिसके पात्र गाँधीजी, तिलक, मोतीलाल नेहरू इत्यादि ने प्रेक्षकों के दिल में देश-भक्ति का बीजारोपण किया।

१९०० से १९३० तक तेलुगु रंगमंच के विकास में जमीदारों एवं सम्पन्न परिवार के उदारमना लोगों ने योगदान दिया। सारा खर्च उठा कर विभिन्न नगरों में प्रदर्शन करवाया। थिएटर निर्मित किये, लेखकों को प्रोत्साहन दिया और नाटक कम्पनियाँ भी चलायीं। लेकिन इसके बाद तेलुगु रंगमंच ठेकेदारों के हाथों में चला गया। जहाँ पहले नाटकों का प्रदर्शन एक विशुद्ध कला मानकर उनकी आराधना होती थी, वहाँ पर १९३० के बाद एक व्यावसायिक रूप धारण करके नाटक अपनी प्राचीन गरिमा से वंचित होने लगे। लगभग इसी समय में सिनेमा का आविर्भाव हुआ; फलतः तेलुगु रंगमंच के विख्यात नट और नटी फिल्म-क्षेत्र में चले गये। नाटकगृह सिनेमा गृह के रूप में परिवर्तित होने लगे।

आन्ध्र नाटक कला परिषद—आन्ध्र में एक ओर जहाँ पेशेवर नाटक और ठेकेदार नाटक विस्तृत पैमाने पर चल रहे थे, उसी समय १९२९ में तेनाली में 'आन्ध्र नाटक कला परिषद्' की स्थापना हुई। इससे अनेक नाटककारों, अभिनेता और अभिनेत्रियों में एक नया उत्साह आया। इस प्रकार नाटक कला और रंगमंच के विकास में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। वास्तव में नाटक कला परिषद की स्थापना के पश्चात ही अत्यधिक सामाजिक नाटक रचे गये व प्रदर्शित होने लगे। इसके पूर्व भी कतिपय सामाजिक नाटक रचे गये। किंतु उनमें दो-चार नाटक ही विशेष लोकप्रिय हुए। वैसे नाटक कला परिषद की स्थापना १९२९ में हुई। किंतु १९४६ तक परिषद के द्वारा उल्लेखनीय कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं हुए। प्रारम्भ में परिषद के द्वारा नाटक प्रतियोगिताएँ संचालित होती थीं और श्रेष्ठ नाटकों व कलाकारों को नकद पुरस्कार तथा स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया जाता था। यह कार्यक्रम

१६४६ के बाद पुनः चालू हुआ। उत्तम सामाजिक रचनाओं को पुरस्कार देने की व्यवस्था करके नाटक लेखन व प्रदर्शन के लिये भी कुछ नियम बनाये गए। परिषद का वार्षिक आयोजन एक विशाल सांस्कृतिक समारोह के रूप में होता था। जनता उन नाटकों को देख मनोरंजन के साथ सामाजिक विकृतियों से दूर रहने की प्रेरणा भी ग्रहण करती थी।

१६४६ में नाटक कला परिषद ने नाटक-प्रतियोगिता का आयोजन किया। उस संदर्भ में आचार्य आत्रेय ने श्री कोंडमुदि गोपाल राय शर्मा कृत "एदुरीता" (विपरीत तैर) नाटक का प्रदर्शन करके उत्तम अभिनेता तथा दर्शक के पुरस्कार प्राप्त किये। यह नाटक वर्णान्तर विवाहों के समर्थन में रचा गया था। इसके उपरांत सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वास के खण्डन में अनेक उत्तम नाटक प्रकाश में आये। तदुपरांत १६४६ में आचार्य आत्रेय द्वारा विरचित "एन० जी० ओ०" (गुमाश्ता) सर्वोत्तम नाटक घोषित हुआ। आत्रेय के अन्य नाटकों में "ईनाडु" (आज) हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबोध करने वाला नाटक पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। इनके द्वारा प्रणीत "विश्व शान्ति" (युद्ध की विभाषिका का खण्डन व शान्ति की स्थापना पर बल देने वाला नाटक) "कप्तलु" (मेंढक), "भयं" तथा "सम्राट अशोक" आदि सफलतापूर्वक सैकड़ों बार मंच पर अभिनीत हुए। "कप्तलु" सामाजिक कुरीतियों पर एक व्यंग्यप्रधान नाटक है तो "सम्राट अशोक" प्राचीन इतिहास की समकालीन स्थिति पर व्याख्यात्मक एवं प्रतीकात्मक नाटक है।

वैसे श्री गुरजाड अप्पाराव ने "कन्याशुलकम" नाटक रचकर तेलुगु नाटक-जगत में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में ही अभूतपूर्व क्रांति पैदा की थी। तदनन्तर अंग्रेजी भाषा के विख्यात नाटककार इब्सन के नाटकों के आधार पर राजमन्नार, बल्लारी राघवाचार्य इत्यादि ने समाज में नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों की कटु आलोचना करते हुए अनेक नाटक रचे। समाज में जमींदारों व नवाबों तथा उच्च वर्ग द्वारा निम्नवर्ग के प्रति होने वाले शोषण पर स्वतंत्रता के पूर्व ही कई नाटक समाज के सम्मुख प्रस्तुत हुए।

परन्तु १६४७ तथा १६५५ के बीच जो नाटक रचे गये उनमें कृषक, मजदूर तथा जमींदारों के बीच होने वाले संघर्ष को अधिक प्राथमिकता देते हुए असंख्य नाटक रचे गये। इन नाटकों के नायक पीड़ित, शोषित एवं दलित वर्ग के नेता हैं।

आत्रेय ने समाज, शासन-व्यवस्था, पीड़ित प्रजा का आक्रन्दन, असहनशीलता, क्रोध इत्यादि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विषमताओं पर करारे की चोट करते हुए जनता का प्रतिनिधित्व किया। जनता की समस्त

प्रकार की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उसमें जागृति पैदा करने वाले नाटक रचकर आचार्य आत्रेय आधुनिक नाटक के युगकर्त्ता बन गए।

आत्रेय के अनुकरण पर दलित वर्ग के जीवन से सम्बन्धित निराशा, व्यथा, कुण्ठा अनास्था तथा विषमताओं का चित्रण करते हुए श्री अनिशेट्टि सुब्बाराव ने "गालि मेडलु" (हवामहल), श्री पितिशेट्टि श्री राममूर्ति ने "कुल लेनि पिल्ल" (निम्न जाति की युवती), "पल्ले पडुचु" (देहाती युवती), "अन्नाचलेल्लु" (भाई-बहन), "पंजरं लोनि पक्षलु" (पिंजड़े के पक्षी) रचे जो मंच पर अनेक बार सफलतापूर्वक मंचित हुए।

तेलुगु नाटक-क्षेत्र में आन्ध्र नाटक कला परिषद के साथ दो-तीन अन्य संस्थाओं ने भी अभूतपूर्व प्रयोग किये। उनमें अत्यन्त उल्लेखनीय प्रयास "आन्ध्र विश्व कला परिषद" (आन्ध्र विश्वविद्यालय वालटेर) के द्वारा स्थापित "प्रयोगात्मक नाटक मंच (Experimental Theatre) तथा १९४५ में विजयवाडा में डॉ० राजा राव के पर्यवेक्षण में स्थापित "प्रजा नाट्य मंडली" द्वारा हुए हैं। १९४४-१९६३ के बीच आन्ध्र विश्वविद्यालय के नाटक समाज के सहयोग से लगभग १७५ छोटे व बड़े नाटकों का प्रदर्शन करके तेलुगु नाटक रंगमंच के क्षेत्र में अभूतपूर्व चेतना पैदा की। १९४३-१९६३ के मध्य जो आन्ध्राभ्युदय उत्सव मनाये गये, उनके द्वारा विद्यार्थी-शिक्षकों के बीच तेलुगु नाटक-प्रदर्शन व प्रयोग सम्बन्धी कार्यक्रमों में अनुपम जागृति हुई। इन उत्सवों के सन्दर्भ में अन्तरकालेज नाटक प्रतियोगिताएँ आयोजित हुईं, जिनमें उत्तम नाटक, अभिनेता, प्रदर्शन एवं नाटककार भी पुरस्कृत किये जाते थे। इस संस्था की ओर से दर्जनों सामाजिक, ऐतिहासिक, समस्याप्रधान, संगीत व नृत्य रूपक, गेयात्मक मूक नाटक तथा अंग्रेजी व हिन्दी नाटक भी प्रदर्शित हो प्रशंसित हुए हैं।

१९४५ में स्थापित प्रजा नाट्य मण्डली की ओर से श्री सुंदर सत्यनारायण तथा वासिरेड्डी भास्कर राव द्वारा संयुक्त रूप में रचित "मुंदडुगु" (आगे कदम) तथा "मा भूमि' (हमारी जमीन) अनेक नगरों में सफलतापूर्वक मंचित हुए। १२ प्रदर्शनों के पश्चात तत्कालीन शासन ने 'मुंदडुगु' नाटक के प्रदर्शन पर रोक लगा दी और वह नाटक जब्त हुआ।

तेलुगु नाटक रंगमंच के विकास में अनुपम योगदान देने वाला नाटक "समाज तेलुगु लिटिल थिएटर" है। इसके संस्थापक श्री कोप्परपु सुब्बाराव ने न केवल अनेक नाटक रचकर सफलतापूर्वक उनका प्रदर्शन कराया अपितु नाटक कला सम्बन्धी सैकड़ों तेलुगु व अंग्रेजी की पुस्तकों का एक सुन्दर पुस्तकालय भी स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश नाट्य संघ, आन्ध्र नाटक कला परिषद, संगीत नाटक अकादमी इत्यादि के संयुक्त तत्वावधान में प्रतिवर्ष नाटकोत्सव मनाये जाते हैं। इन संस्थाओं ने नाट्य विद्यालय का भी संचालन किया। तेलुगु नाटक-क्षेत्र में पुनर्जागरण पैदा करने के विचार से राजमहेन्द्री के "राघव कला समिति", "वेंकटगिरि नाटक समाज" बापट्ला की "कलावाणी", विजयवाड़ा का "रसना समाख्य", श्रीकाकुलम का "नटराज कला मन्दिर", अनन्तपुर का "ललित कला मन्दिर", पालकोल्लु की "आन्ध्र नाट्क मंडली", कोप्परपु सुब्बाराव की "नाटक कला परिषत्तु", नरसापुरम की "नाटक कला परिषत्तु" कूडूर का "संस्कृति सम्मेलन" तथा अन्यान्य ललित कला परिषत्तु, रायल नाटक कला परिषत्तु, इत्यादि असंख्य नाटक समाजों ने नाटक प्रदर्शन की प्रतियोगिताएँ चलाकर उत्तम नाटक, नटन्नटी, प्रदर्शन, रंगकर्मी इत्यादि को पुरस्कार, पदक, प्रमाण-पत्र एवं आर्थिक सहायता प्रदान करके तेलुगु रंगमंच के विकास में अनुपम योगदान दिया।

इस प्रकार नाटक समाजों व संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन पाकर नाटक लेखक कला व प्रदर्शन में अनेक नवीन प्रयोग किये गये। नाटक वस्तु में आश्चर्य-जनक परिवर्त्तन आया, सामाजिक चेतना, "कमिटमेंट" प्रधान नाटक रचे गये। नारी पात्रों के बिना भी नाटक लिखे गये। फ्राइड, कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक आदि मनीषियों के विचारों को प्रतिबिम्बित करने वाले नाटक भी रचे गये।

कोर्रपाटि गंगाधर राव ने ८८ नाटक रचकर विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये। "तस्मात जाग्रत", "लोक पोकडा" आदि इनके नाटक प्रेक्षकों में अभिरुचि पैदा करने में सफल रहे।

तेलुगु के सुप्रसिद्ध नाटककारों में भीमन्ना, कोडालि गोपाल राव, बेन्लम-कोंड रामदास, अंगर सूर्याराव, डी० वी० नरसराजु, रावि कोंडल राव, कोर्लपाटि श्रीराममूर्ति, वेदांत कवि, पडाल, चिल्लर भाव नारायण, भमिडि-पाटि कामेश्वर राव, राधाकृष्ण, के० एल० नरसिंहाणाम, गेल्लपूडि मारुती रा, श्रीवात्सव, सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री आदि प्रमुख हैं।

श्री सी० नागभूषणान 'शशि थिएटर्स' की ओर से "रक्त कन्नीरु" (खून के आँसू) अब तक ३०० बार आन्ध्र में प्रदर्शित करके तेलुगु रंगमंच में तहलका मचा दिया। सर्वश्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री, कोंडमुदि श्रीराम-मूर्ति, मंथा वेंकट रमण, आर० वि० एम० गणेश पात्रो, एन० आर० नंदी, पलिगुम्मि पद्मराजु, राघव, रामस्वामी, बुच्चिबाबू, सच्चिदानन्द शास्त्री, कुंटुबरावा, सी० नारायण रेड्डी, गोरा शास्त्री, अमरेन्द्र, हितश्री, अमंचर्ल गोपाल राव, चिल्लर भाव नारायण, वेणु, के० वी० रमणा रेड्डी नार्ल

वेंकटेश्वर राव आदि असंख्य नाटककारों ने तेलुगु नाटक साहित्य के विकास में अनुपम प्रतिभा का योगदान किया है।

आज आन्ध्र में सामाजिक चेतना को दृष्टि में रखते हुए तेलुगु रंगमंच में प्रयोगात्मक नाटक प्रस्तुत किये जा रहे हैं। श्री बी० नरसिंग राव ने "जन नाट्य मंडली" (हैदराबाद) स्थापित कर "Street Corner Plays" (नुक्कड़ नाटक) प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। "थिएटर आर्ट्‌स की ओर से गद्दर भी इस विधा को अधिक लोकप्रिय बनाने में संलग्न है। गली-कूचों के नुक्कड़ों पर ३०-४५ मिनट के अन्दर किसी प्रकार के अलंकारों के बिना गाँव व शहरों में भी ऐसे नाटक प्रदर्शित किये जा रहे हैं। इन नाटकों की विशेषता यह है कि गली के किसी नुक्कड़ पर साधारण दरजे से पर्दे का उपयोग करके नाटक प्रदर्शित किये जाते हैं। एक व्यक्ति समय, संदर्भ व घटना के आधार पर अनेक पात्रों का रूप धरकर अभिनय करता है। इस प्रकार मंचित होने वाले अनेक तेलुगु नाटकों के साथ बंगला के प्रख्यात नाटककार श्री बादल सरकार का जुलूस "ऊरेगिंपु" नाम से बीसों बार मंचित होकर जनप्रिय हुआ है।

अन्त में तेलुगु नाटक एवं रंगमंच की लोकप्रियता का यही एक उदाहरण माना जा सकता है कि आजकल तेलुगु में एक हजार के लगभग नाटक तथा ६००० के करीब एकांकी रचे गये हैं और तेलुगु नाटक देखने कवीन्द्र रविन्द्र-नाथ टैगोर स्वयं विजयावाडा पधारे और नाट्य-सम्राट स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर ने तेलुगु नाटक परिषद के वार्षिकोत्सव में उपस्थित होकर न केवल प्रमुख कलाकारों को पुरस्कार प्रदान किये अपितु गद्‌गद् होकर तेलुगु रंगमंच की सफलता की हार्दिक प्रशंसा भी की।

७

तेलुगु का समीक्षा-साहित्य

तेलुगु में समीक्षा-साहित्य का प्रादुर्भाव १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुअ और वह बराबर प्रगति को प्राप्त करता जा रहा है। तेलुगु के सम्पूर्ण-समीक्षा साहित्य को हम स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। तेलुगु भाषा से सम्बन्धित समीक्षा और दूसरा साहित्य से सम्बन्धित समीक्षा। पाश्चात्य भाषा शास्त्रवेत्ताओं ने बड़ी छान-बीन के उपरान्त अपनी भाषाओं के लिए जो सिद्धान्त निर्धारित किये, उनका अपनी भाषाओं के साथ समन्वय कर नयी रीतियों में यहाँ के विद्वानों ने विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किये। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ रचे गये हैं जिनमें केवल तेलुगु भाषा से सम्बन्धित समीक्षा ही नहीं अपितु तेलुगु के साथ अन्य दाक्षिणात्य भाषाओं के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। ये समीक्षा-ग्रन्थ भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं। इस प्रकार तेलुगु में समीक्षा-शास्त्र ग्रन्थों के प्रणयन का सूत्रपात हुआ।

गद्य साहित्य के विभिन्न अंग एवं उपांगों का विकास भी होने लगा था। "गद्य ब्रह्म" नाम से विख्यात श्री वीरेशलिंगम् ने "विवेकबर्धिनी", "सतीहित बोधिनी" और "हास्य संजीवनी" नामक पत्रों में विमर्शनात्मक लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया। श्री वीरेशलिंगम् केवल कवि, नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार ही नहीं थे अपितु वे आलोचक भी थे। उन्होंने देखा कि लोग मनमाने ढंग पर रचनाएँ करते जा रहे हैं। उनका समुचित रूप से परिष्कार न किया जाए तो साहित्य के बिगड़ने की संभावना थी। अतः उन्होंने उन रचनाओं पर आलोचना रूपी अंकुश का प्रहार किया। ये तेलुगु साहित्य के "महावीर प्रसाद द्विवेदी" कहे जा सकते हैं। इन्होंने भी द्विवेदी जी की तरह पत्र-पत्रिकाओं में अपने आलोचनात्मक लेखों द्वारा काव्य और कवियों के गुण-दोषों का निरूपण किया। साथ ही साथ आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। इनका प्रथम समीक्षा ग्रन्थ 'कोक्कोंड वेंकटरत्न कविकृत

विग्रहतंत्र विमर्शनम्' है। इसमें साहित्यिक समीक्षा-रीतियों का अभाव नहीं, परन्तु इसमें व्यक्ति-दूषण खटकता है।

तेलुगु में समीक्षा-साहित्य का प्रारम्भिक समय पत्र-पत्रिकाओं में विमर्श-नात्मक लेख प्रकाशित करने तक सीमित रहा है। उसमें 'विवेकवर्धिनी', 'अमुद्रित ग्रन्थ चितामणि', 'कलावती', 'आन्ध्र भाषा संजीवनी' आदि पत्रिकाओं में विशेष रूप से समीक्षा प्रधान निबन्ध प्रकाशित होते थे और इनमें 'रेफद्वय', 'पात्रोचित भाषा' आदि विषयों पर आलोचना चलती थी। क्रमशः यह आलोचना पुस्तक रूप में होने लगी। श्री टी० एम० शेषगिरि शास्त्री जी ने 'अर्थानुसार तत्व' और 'आन्ध्र शब्द तत्वम्' नाम से दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित किये। यह सन् १८७३ की बात है। फिर ५ वर्ष के उपरान्त श्री गोपालरावं नायुडु ने तेलुगु भाषा के सम्बन्ध में बड़ी छान-बीन की और इस अनुसंधान के परिणामस्वरूप 'आन्ध्र भाषा चरित्र संग्रहम्' (तेलुगु भाषा का इतिहास संग्रह) नामक ग्रन्थ तेलुगु वाङ्मय को भेंट किया।

भाषा सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थों के साथ अलंकार शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना अधिक होने लगी। श्री वीरेशलिंगम पंतुलुजी ने बालकों के उपयोगार्थ 'काव्य संग्रह' और 'अलंकार संग्रह' नामक दो पुस्तकें लिखीं। 'अलंकार संग्रह' नाम से श्री पी० रंगाचार्युलुजी ने भी एक पुस्तक लिखी है। श्री ए० वरदाचारीजी ने 'तेलुगु वचन (गद्य) रचना' नाम से गद्य साहित्य पर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ उपस्थित किया। श्री एम० एच० सुब्बरायुडु जी ने 'उपाध्याय बोधिनी' और 'उत्कलेखन चन्द्रिका' लिखी। श्री परवस्तु रंगाचार्युलु कृत 'वर्ण निर्णय' भी एक उत्तम कृति है। श्री काशीभट्ट ब्रह्मय्य शास्त्री ने भास्कर कवि पर 'भास्कररोदंतम्' नामक एक समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा।

प्रेस की स्थापना के उपरान्त धड़ाधड़ प्राचीन ग्रन्थ, जो अमुद्रित थे, प्रकाशित होने लगे। उस समय उन ग्रन्थों की भूमिका के रूप में उन-उन काव्यों की जो समीक्षात्मक भूमिका लिखी गयी, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। ये आमुख अत्यन्त मूल्यवान व उपयोगी साबित हुए। ये आमुख ५-१० पृष्ठ की साधारण आलोचनाएँ नहीं अपितु ५० पृष्ठों से लेकर सौ-डेढ़ सौ पृष्ठ के हैं। हिन्दी में श्री रामचन्द्र शुक्लजी और लाला भगवानदीन ने इस प्रकार की भूमिकाएँ लिखी हैं। इसी काल में श्री वेन्नेटि रामचन्द्र रावजी ने 'मनु-वसु चरित्र-रचना विमर्शनम्' नामक ग्रन्थ लिखा जो तेलुगु साहित्य के उत्तम महाकाव्य 'मनु चरित्र' और 'वसु चरित्र' पर समीक्षात्मक है।

तेलुगु भाषा और साहित्य के क्षेत्रों में खोज का कार्य बढ़ता गया; फलतः समीक्षा-साहित्य का समुचित रूप में विकास होने लगा। धीरे-धीरे

पाश्चात्य नवीन समीक्षा-पद्धति का प्रभाव तेलुगु पर पूर्ण रूप से लक्षित होने लगा। प्राचीन अलंकारिक पद्धति पर जो समीक्षा चलती रही, क्रमश वह लुप्तप्राय होने लगी। तेलुगु साहित्य में नूतन पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति पर प्रथम ग्रन्थ प्रस्तुत करने वाले श्री मट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी जी थे। इन्होंने महाकवि पिंगलिसूरन्ना की कविता-शक्ति का निरूपण करने के अभिप्राय से 'कवित्व तत्व विचारम्' नामक एक सुन्दर समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह अपने ढंग का अद्वितीय है। इसमें समीक्षा सम्बन्धी कई नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ ने तेलुगु साहित्य में तहलका मचा दिया। नये आलोचकों को प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। फिर क्या था? श्री वंगूरि सुब्बाराव जी ने तेलुगु साहित्य का अच्छी तरह से अनुसंधान करके 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' (तेलुगु साहित्य का इतिहास) लिखा। इससे वे संतुष्ट नहीं रहे, अन्वेषण का कार्य चलता रहा; फलस्वरूप तेलुगु साहित्य को 'शतक कवुल चरित्र', 'वेमना' आदि अनेक विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रदान किये। इनके उपरांत तेलुगु साहित्य का इतिहास कई लोगों ने अपने ढंग से खोज करके प्रस्तुत किया है। उनमें श्री के० वेंकटनारायण का 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहम्', श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलु कृत 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' उल्लेखनीय हैं। श्री खंडवल्लि लक्ष्मीरंजनमजी ने भी तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त इतिहास 'आन्ध्र साहित्य चरित्र संग्रहम्' नाम से दो भागों में प्रस्तुत किया है।

तेलुगु साहित्य अत्यन्त विस्तृत है। उसका संपूर्ण साहित्य एक ही ग्रन्थ में प्रस्तुत करना कठिन था। अलावा इसके कि कुछ आलोचकों ने इस क्षेत्र में गहरी छान-बीन करके दो-तीन ग्रन्थ (साहित्य का इतिहास) प्रस्तुत किये थे; अतः बाद के आलोचकों ने तेलुगु वाङ्मय के एकाध युग को अथवा गद्य या पद्य सम्बन्धी किसी एक शाखा को लक्ष्य में रख कर खोज की और उससे सम्बन्धित समीक्षा-ग्रन्थ तैयार किये। ऐसे लोगों में श्री टेकुमल्ल अच्युत राव प्रथम हैं। इन्होंने केवल तेलुगु साहित्य का स्वर्ण-युग कहे जाने वाले विजयनगर साम्राज्य के समय के साहित्य पर शोध-कार्य किया और 'विजय नगर साम्राज्य मंदलि 'आन्ध्र वाङ्मय चरित्र' नाम से एक उत्तम विमर्शनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। श्री गोब्बूरि वेंकटानंद राघवरावजी ने तेलुगु के गद्य साहित्य की खोज की और 'आन्ध्र गद्य वाङ्मय चरित्र' नामक समीक्षा-ग्रन्थ लिखा। श्री भोगराजु नारायणमूर्ति ने भी तेलुगु कविता की छान-बीन करके उस पर 'आन्ध्र कवित्व चरित्र' नामक एक आलोचनात्मक ग्रन्थ तैयार किया है।

मद्रास विश्वविद्यालय की तरफ से श्री निडदवोलु वेंकटराव ने अनुसंधान का अच्छा कार्य किया। इनके अनुसंधान के फलस्वरूप अब तक 'तेलुगु कवुल

चरित्र' (तेलुगु कवियों का इतिहास), 'आन्ध्र वचन (गद्य) वाङ्मयम्' और 'दाक्षिणात्यांध्र साहित्य चरित्र' उल्लेखनीय हैं। उन्होंने तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'भारती' में शैव वाङ्मय तथा अन्य विषयों पर जो समीक्षात्मक लेख प्रकाशित किये, वे अधिक स्थायी मूल्य रखते हैं।

इस समय तेलुगु के समीक्षा-साहित्य को समृद्ध करने में अनेक अनुसंधान-कर्त्ता लगे हुए हैं। श्री चागंटि शेषय्याजी तेलुगु वाङ्मय के समस्त कवियों का समग्र परिचय एक बृहत् समीक्षा ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। उसका नाम है 'आन्ध्र कवितरंगणि'। इसके अब तक ४-५ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। दस भागों में प्रकाशित करने की योजना है। इसमें कवियों का व्यापक परिचय ही नहीं दिया जाएगा अपितु उसके साथ उस समय की सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों का भी परिचय दिया जाएगा, जो साहित्य के इतिहास का ही काम देने वाला सिद्ध होगा।

तेलुगु के कवियों की जीवनियों व परिचय अनेक लोगों ने प्रकाशित किया है। श्री वीरेशलिंगमजी ने 'तेलुगु कवुल चरित्र' नाम से तेलुगु कवियों का पूर्ण परिचय (इतिहास) तीन भागों में प्रकाशित किया है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। इससे अनेक लोगों को मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। जहाँ कवि और लेखकों ने कवियों की जीवनियाँ प्रकाशित कीं वहाँ कवयित्री व लेखिकाएँ भी चुप नहीं रहीं। श्रीमती ऊटुकूरि लक्ष्मीकांतम्माजी ने 'आन्ध्र कवयित्रुलु' (आन्ध्र कवयित्रियाँ) नामक समीक्षा-ग्रन्थ लिखा जिसे 'तेलुगु भाषा समिति' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

डॉ० नेलटूरि वेंकटरमणय्या ने मधुरा और तंजाऊर के नायक राजाओं के समय के आन्ध्र वाङ्मय की समीक्षा करते हुए उस युग की समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला और 'दक्षिणांध्र वाङ्मय चरित्र' नामक एक सुन्दर समीक्षा-ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ आन्ध्र वाङ्मय के केवल एक युग पर प्रकाश डालने वाला मात्र है। विजयनगर साम्राज्य के समय में तेलुगु साहित्य ने बड़ी उन्नति की। इसके बाद तंजाऊर और मधुरा के राजाओं के दरबारों में तेलुगु साहित्य ने अच्छा विकास प्राप्त किया था। श्री वेंकटरमणय्या ने इस युग के साहित्य की बड़ी छान-बीन की और अनेक अज्ञात ग्रन्थों एवं कवियों का परिचय आन्ध्र-जगत् को कराया है।

स्वर्गीय श्री सुवरम प्रताप रेड्डी जी ने आन्ध्रवासियों के सामाजिक जीवन का अच्छा अध्ययन किया और प्राचीन समय से आज तक के आन्ध्र जीवन का परिचय देने वाला एक बृहत् ग्रन्थ 'आन्ध्रुल सांधिक चरित्र' (आन्ध्र-वासियों का सामाजिक इतिहास) प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ को १९५५ में भारत सरकार से ५००० रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

आज तो गद्य व पद्य के प्राय: समस्त प्रकार के अंग और उपांगों का बड़ी तेजी के साथ विकास होता जा रहा है। वाङ्मय की प्रत्येक शाखा व उपशाखा की बड़ी सूक्ष्मता के साथ खोज की जा रही है। उस शाखा से सम्बन्धित सभी विवरणों का विस्तृत रूप से परिचय भी दिया जा रहा है। मानव अधिक जिज्ञासु होकर वस्तु की जड़ तक पहुँचने और उसके रहस्यों के उद्घाटन करने में प्रवृत्त है। इससे अनेक नये विषयों का पता लग रहा है और मानव का मस्तिष्क भी विकसित होता जा रहा है। आज तक जो अनादृत वाङ्मय माना जाता था, वह भी आज साहित्य के अंतर्गत माना जा रहा है। उदाहरण के लिए लोक-साहित्य की ही बात लीजिए। इसकी बड़ी छान-बीन इस समय हो रही है। इस साहित्यिक शाखा के उद्धार में और इसकी सम्यक् रूप से समीक्षा करके विस्तृत रूप से समाज को परिचित कराने के हेतु कई विद्वान लगे हुए हैं। श्री हरि आदिशेषुवुजी ने इस शाखा की खोज करके 'जानपद गेय विमर्श' (लोकगीतों की समीक्षा) नाम से उत्तम आलोचनात्मक ग्रन्थ तैयार किया है। लेखक के अनुसंधान कार्य की प्रशस्ति सर्वत्र हुई। तेलुगु भाषा समिति ने पुरस्कार द्वारा लेखक को गौरवान्वित भी किया है। श्री मदनूरि संगमेशम जी ने भी 'तेलुगु साहित्य में हास्य रस' नामक एक विमर्शनात्मक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ को भी तेलुगु भाषा समिति का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

समीक्षा-साहित्य को इस समय तेलुगु भाषा समिति द्वारा खूब प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। १९५५ में तेलुगु भाषा समिति ने 'दक्षिणात्युल नाट्य कला चरित्र' (दक्षिणात्यों की नृत्य-कला का इतिहास), जिसे श्री नटराज रामकृष्ण ने तैयार किया था, पुरस्कार मिला। इसके अलावा 'कवित्तय', श्रीवात्सव कृत 'उष: किरणालु' आदि अनेक समीक्षा-ग्रन्थों को तेलुगु भाषा समिति ने पुरस्कृत किया है।

तेलुगु साहित्य के अनुसंधानकर्त्ताओं में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, श्री कोमर्राजु लक्ष्मण राव पंतुलु, श्री मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री, श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा, श्री नेलटूरि वेंकटरमणय्या, श्री पिंगलि लक्ष्मीकांतम् विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे हैं जो बाद को पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए हैं। उनके द्वारा तेलुगु वाङ्मय व इतिहास का अच्छा परिचय मिलता है। इन लेखों के अलावा श्री प्रभाकर शास्त्री ने कवि सार्वभौम श्रीनाथ चरित्र शृंगार नेषध पर 'शृंगार श्रीनाथम्' नाम से एक श्रेष्ठ समीक्षा-ग्रन्थ लिखा है। वैसे ही श्री अनंत कृष्ण शर्माजी का 'वेमना' भी उत्तम कोटि का समीक्षा-ग्रन्थ है। इन्होंने नाटक साहित्य पर जो भाषण दिये वे भी समीक्षा-साहित्य में स्थायी मूल्य रखते हैं।

उपर्युक्त समीक्षा-ग्रन्थों के अतिरिक्त समय-समय पर कुछ विद्वानों ने प्राचीन समय के काव्यों की समीक्षा करते हुए बड़ी-बड़ी पुस्तकें ही लिख डाली हैं। उनमें वस्तु, रस, अलंकार आदि काव्य-तत्वों का विमर्शन हुआ। इस प्रकार के ग्रन्थों में श्री वज्झल सीता राम स्वामी शास्त्री कृत 'वसु चरित्र विमर्शनम्', श्री भूपति लक्ष्मीनारायण रचित 'भारतम-तिक्कन रचना', श्री वेमूरि वेंकटरामनाथम् कृत 'सौन्दर्य समीक्षा', श्री कोराड रामकृष्णय्या प्रणीत 'आन्ध्र भारत कविता विमर्शनम्', श्री गडियारम वेंकट शास्त्री कृत 'श्रीनाथुनि कविता साम्राज्यमु' इत्यादि ग्रन्थ तेलुगु समीक्षा साहित्य के उत्तम ग्रन्थरत्न हैं।

तेलुगु साहित्य पर ही नहीं, तेलुगु भाषा पर भी समीक्षा-ग्रन्थ समय-समय पर रचे गये। देशी विद्वानों के साथ विदेशी पंडितों ने भी इस कार्य में हाथ बाँटा। बिशप काल्डवेल ने 'द्रविड भाषा व्याकरण' लिख कर तुलनात्मक अध्ययन का श्रीगणेश किया। यह ग्रन्थ अपने क्षेत्र में अकेला है। श्री कोराड रामकृष्णय्याजी ने 'भाषोत्पत्ति क्रमम्-भाषा चरितम्' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा। 'सन्धि' नामक इनका एक दूसरा ग्रन्थ भी इसी कोटि का है। डाक्टर चिलकूरि नारायण रावजी ने 'आन्ध्र भाषा चरित्र' नाम से एक बृहत् समीक्षा-ग्रन्थ लिखा। इसमें आपने तेलुगु भाषा को आर्य भाषा परिवार की भाषा सिद्ध किया। इस पर वाद-विवाद एवं चर्चाएँ बहुत चलीं। इस ग्रन्थ के उत्तर के रूप में श्री गांठि सोमयाजी ने 'आन्ध्र भाषा विकासम्' और 'द्राविड भाषलु' (द्रविड़ भाषाएँ) नामक दो विमर्शनात्मक ग्रन्थ राजों की सृष्टि की। आपने तेलुगु को द्राविड़ भाषा-परिवार की करार दिया। इस विषय को लेकर आज भी चर्चा चल रही है।

अब समीक्षकों की दृष्टि आधुनिक युग पर जाकर केन्द्रित हुई। तेलुगु का आधुनिक साहित्य बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है। इस युग में गद्य साहित्य की अनेक शाखाएँ निकलीं। कविता में भी नयी रीतियाँ चलीं। श्री कुरुगंटि सीतारामय्या और श्री पिल्ललमर्रि हनुमंतरावजी ने 'नव्यांध्र साहित्य वीथुलु' (आधुनिक तेलुगु साहित्य की रीतियाँ), श्री देवलपल्लि रामानुज रावजी ने 'नव्य कविता नीराजनम्', श्री उमाकांतम् कवि ने 'नेटि कालपु कवित्वम्' (आज की कविता), श्री जयंति रामय्या पंतुलुजी ने "आधुनिक आन्ध्र विकास वैखरि", श्री जोन्नलगड्ड सत्यनारायण मूर्ति ने 'साहित्य तत्व विमर्श', श्री जी० जी० कृष्णारावजी ने 'काव्यजगत्तु', श्री बसवराजु अप्पारावजी ने 'आन्ध्र कवित्व चरित्र' नाम से आधुनिक कविता पर श्रेष्ठ समीक्षा-ग्रन्थ प्रस्तुत किया है।

गद्य-साहित्य की शाखाओं पर भी आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

श्री मोहम्मद कासिम खाँ ने 'कथानिका रचना' (कहानी की रचना) लिखी। श्री गोरेपाटि वेंकट सुब्बय्या ने कहानीकारों पर सुन्दर समीक्षात्मक ग्रन्थ 'अक्षराभिषेकम्' नाम से तैयार किया है। श्री शोंठि कृष्णमूर्ति ने 'कथलु व्रायडमेला ?' (कहानी कैसे लिखी जाए ?' नाम से कहानी पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी। श्री पुराणम् सूरि शास्त्रीजी ने 'नाट्योत्पलम्', 'रूपक रसालमु' और 'विमर्शक पारिजातम्' नाम से नाटक तथा अन्य विषयों पर समीक्षा-ग्रन्थ तैयार किया। श्री जम्मलमड़क माधवराय शर्मा ने अनेक रीति शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

इस प्रकार तेलुगु में समीक्षा-साहित्य उन्नति को प्राप्त करता जा रहा है। कहानी, उपन्यास, नाटक इत्यादि सभी विषयों पर समीक्षात्मक लेख व ग्रन्थ प्रकाशित होते जा रहे हैं। तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक मासिक पत्रिका 'भारती' में अच्छे आलोचनात्मक लेख प्रकाशित होते थे। उन लेखों को समीक्षा साहित्य की निधि कहें तो अत्युक्ति न होगी। 'भारती' के अलावा 'किन्नेर', 'स्वतन्त्र', 'सुजाता', 'कृष्णा पत्रिका' आदि पत्रों में भी अच्छे लेख आ रहे हैं। श्री मल्लमपल्लि सोम-शेखर शर्माजी ने इतिहास सम्बन्धी अच्छी खोज की और अनेक ग्रन्थ भी लिखे हैं। श्री पुट्टपर्ति श्री निवासाचार्युलु, श्री चिल्लुकूरि वीरभद्र राव, श्री रालपल्लि अनंत कृष्ण शर्मा, श्री निडदवोल वेंकटराव, श्री बुलुसु वेंकट रामय्या, श्री कोराड रामकृष्णय्या, तिम्मावज्झुल कोदण्डरामय्या, गंटि जोगिसोमयाजी, डॉ० सी० नारायण रेड्डी, डॉ० जी० वी० कृष्णराव, डॉ० बी० रामराजु, डॉ० दिवाकर्ल वेंकटावधानी, डॉ० भूपति लक्ष्मीनारायण आदि अनेक गण्यमान्य विद्वान् इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों में तथा अन्य संस्थाओं में ही नहीं, व्यक्तिगत रूप से भी अनेक लोग इस शोध-कार्य में लगे हुए हैं। इस समय होने वाले कार्य को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि तेलुगु का समीक्षा साहित्य उज्ज्वल है और वह किसी अन्य भारतीय भाषाओं के समीक्षा-साहित्य से पिछड़ा नहीं है।

८

यक्ष गान

'यक्ष गान' आन्ध्र का एक प्राचीन लोकगीति नाट्य है। इसमें साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय इत्यादि कलाओं का अच्छा संगम हुआ है। उन दिनों में संस्कृत से रूपक, उपरूपक आदि केवल सभ्य समाज के मनोरंजन के साधन बने हुए थे। सर्वसाधारण प्रजा का मनोरंजन यक्षगान-जैसे देशी लोकगीति नाट्य ही किया करते थे।

यों तो मानव की नाटक कला की तृष्णा एवं रूपक प्रदर्शन की अभिलाषा भिन्न वर्गों में, भिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई। आन्ध्र देश का प्रथम नाट्य-कला का रूप 'कुरवंजि' माना जा सकता है। 'कुरव' एक जंगली जाति है, 'अंजि' का अर्थ कदम होता है। इस प्रकार कुरवंजि = 'कुरव' + 'अंजि' दो शब्दों के संयोग से बना है—अर्थात् कुरव नामक एक जंगली जाति का (नृत्य मुद्रा समन्वित) कदम। उनका प्रारंभिक नाट्य रूप कुरवंजि कहलाया। कुरव जाति के लोग दक्षिण में—मुख्यतः आन्ध्र में तिरुपति, श्री शैलम् इत्यादि पुण्य तीर्थों में यात्रियों के विनोदार्थ नृत्य किया करते थे। कुरवंजि आन्ध्र में ही नहीं अपितु समस्त दक्षिण प्रदेश में प्रचलित है। आन्ध्र में ज्ञान कुरवंजि, जीव कुरवंजि तथा सत्यभामा कुरवंजि नाम से उसके तीन रूप प्रसिद्ध थे। किन्तु आज वे सब केवल नाम मात्रावशेष हैं।

कुरवंजि के अनुकरण पर यक्षगानों का निर्माण हुआ है। जक्कुलु नामक जाति ने जिस देशी संगीत नाट्य को जन्म दिया, वही जक्कुल पाट याने 'यक्ष गान' नाम से विख्यात हुआ। यक्ष जाति से सम्बन्धित गीत या गान होने के कारण कालान्तर में यक्षगान कहलाये। इसका देशी रूप ही जक्कुल पाट है। यक्षगान 'नाटक' नाम से भी व्यवहृत है।

प्रथम पालकुरिकि सोमनाथ ने अपने ग्रन्थों में समकालीन तथा प्राचीन अनेक देशी नृत्य, संगीत एवं साहित्य की प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। तदुपरान्त कविसार्वभौम श्रीनाथ ने (ई० सन् १४३० के लगभग) अपने काव्य 'भीम खण्ड' में द्राक्षाराम पुण्य तीर्थ की प्रस्तुति करते हुए लिखा है—

'कीर्तितु रंद्दानि कीर्ति गंधर्वुलु
गांधर्वमुन यक्षगान सरणि'

अर्थात्, 'गन्धर्व यक्षगान की शैली में संगीत में जिसका यश गाते हैं।' यहाँ पर यक्षगान सरणि का जो प्रयोग हुआ है, इससे अभिप्राय यही है कि गन्धर्वों ने यक्षगान पद्धति, रीति अथवा शैली में गान किया था। गान कला की निपुणता के लिए गन्धर्व प्रसिद्ध हैं ही। वे गान कला की विविध रीतियों से भलीभाँति परिचित थे। उस सन्दर्भ में उन लोगों ने यक्षगान की रीति पर गान किया था।

जक्कुलु नामक जिस जाति ने यक्षगान को अपनाया, उसे प्रचलित एवं लोकप्रिय बनाया, वास्तव में उनकी जाति कोई भिन्न रही होगी। परन्तु यक्षगान के अभिनय को उस जाति ने अपना पेशा बनाया। यक्ष-गान को पेशा बनाने के कारण उनकी असली जाति का नाम लोप होता गया और वे 'यक्ष' कहलाये गये होंगे। यक्ष से 'जक्कु' हो गये। तदुपरान्त तेलुगु का 'लु' बहुवचन रूप जुड़ने के कारण 'जक्कुलु' हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि पेशेगत शब्द क्रमशः जातिवाचक रूप में परिणत हुआ होगा।

'जक्कुलु' जाति के लोग आन्ध्र देश के गुण्टूर, गोदावरी आदि जिलों में ही नहीं अपितु रायलसीमा में भी फैले हुए थे। आज भी अनन्तपुरम् जिले में जक्कुलचेरूवु (जक्कों का तालाब) नाम से एक बड़ा गाँव है। इस समय वह मद्रास और बम्बई के रास्ते में एक रेलवे-स्टेशन भी है।

१५वीं शती में विरचित 'क्रीड़ाभिराममु' में 'जक्कुल पुरन्ध्रि' नामक गान-कला की बड़ी प्रस्तुति हुई है। उसमें यक्ष-कन्याओं (जक्कु युवतियों) का वर्णन भी हुआ है। उसी शती के उत्तरार्द्ध में श्री चेन्नशौरि द्वारा रचित 'सौरभ चरित' जक्कुजाति के संगीत रूप कथाख्यान पद्धति में प्रस्तुत हुआ है। 'जक्कुल पुरन्ध्रि' यक्षगान का प्रारम्भिक रूप है। इस नृत्य विशेष के अनुरूप वेष धारण करके, नेपथ्यसंगीत एवं वाद्य विशेषों की सहायता से गान करते तथा गीत के अनुरूप अभिनय करते और कथा सुनाया करते थे। यह सब क्रिया-कलाप एक ही पात्र द्वारा संपन्न होता था। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न पात्र-धारण करने की दशा तक उस समय की कला पहुँची न थी।

१७वीं शताब्दी में रचित 'तंजापुरान्नदान' नाटक का प्रदर्शन जक्कुल रंगसानि की सराये में संपन्न हुआ था। इस कृति द्वारा विदित होता है कि जक्कु जाति के लोग गीत एवं अभिनय कला में प्रवीण थे।

स्वर्गीय सुरवरम प्रताप रेड्डी ने लिखा है—"यक्ष गानों का नामकरण यक्ष (जक्कुलु) जाति के आधार पर ही किया गया है। यक्ष अक्षस प्रान्त,

या यक्षी नामक मंगोल जाति के अथवा युक्षॅन् प्रदेश के लोग होंगे। यह सम्बन्ध कुछ दूर का अवश्य प्रतीत होता है। यक्ष और गन्धर्व गान विद्या में प्रवीण थे। अतः हमारे पूर्वजों ने नृत्ययुक्त गान का नामकरण 'यक्ष गान' किया होगा।

श्री खण्डवल्लि लक्ष्मीरंजनम् ने यक्ष गान प्रकरण में लिखा है—यक्ष गान संगीतप्रधान नाटक है। तेलुगु का प्राचीनतम, नाटक-रूप ही यक्ष गान है। यह 'यक्षगान नाटक तथा 'यक्षगान प्रबन्ध' नाम से भी व्यवहृत है। यक्ष-गानों में नाटक के लक्षण, वार्त्तालाप तथा प्रबन्धात्मक वर्णनों का भी सुन्दर समन्वय हुआ है; अतः यक्षगान इन दोनों नामों से प्रचलित हुए हैं।

आज यक्षगान देशी शैली का नाटक माना जाता है। संस्कृत के रूपक एवं उपरूपकों के लक्षणों से भिन्न होने के कारण यह लोकनाटक कहलाता है। आज यक्षगान भी नाटक की रीतियों पर अच्छा विकास कर चुका है। प्राचीन यक्ष-गानों में संस्कृत के रूपकों की भाँति नान्दी-प्रस्तावना, अंक-विभाग, सन्धि-नियम इत्यादि दिखाई नहीं देते। इनमें रगड विकारमु (ताल प्रधान), द्विपद तथा एललु, अर्द्धचन्द्रिक आदि पद थे। ये सब देशी छन्द की प्रक्रियाएँ हैं।

प्राचीन यक्षगानों में गद्यभाग कम था। यत्र-तत्र कथा-संविधान के अनुरूप गीत-भागों को जोड़ने वाले गद्यभाग मात्र थे।

यक्षगानों के प्रदर्शन के समय प्रारम्भ में इष्टदेवता की प्रार्थना, गणेश की स्तुति होती। तदनन्तर प्राचीन कवियों का स्मरण, कृतिपति का वर्णन, कृति-कर्त्ता का परिचय होता। तत्पश्चात् ही यक्षगान का नामोल्लेख करके सूत्रधार कथा का परिचय देता, कथा-सन्धियों का परिचय सूत्रधार देता और नटी गीत गाते-गाते अभिनय करती।

कुरवंजि और यक्षगानों में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ हैं। कुरवंजि में जहाँ दो-तीन पात्र होते हैं वहाँ यक्षगान में अनेक पात्र होते हैं। कथा-सूत्र को मिलाने के लिए बीच-बीच में यक्षगानों में गद्य का प्रयोग किया जाता है। ऐसे गद्य भाग का वाचन सूत्रधार करता है। पात्र के प्रवेश के समय नाटककार उसके वेष धारण का वर्णन करता है। वर्णन के समाप्त होते ही पात्र प्रवेश करके अपने अभिनय का प्रदर्शन करते हुए गीत गाते हैं। नाटककार के परिचय वाक्य तथा वर्णन जिन यक्ष गानों में कम होते हैं, वे नाटकीयता के अधिक निकट होते हैं। जिनमें वर्णन का अंश अधिक होता है, वे प्रबन्ध काव्य जैसे होते हैं।

यक्षगानों में देशी छन्दों के साथ ताल और लय से युक्त गीत भी होते

हैं। ये गीत अधिकतर लोकगीतों की परम्परा के होते हैं, जिनमें माधुर्य गुण की प्रधानता होती है। अत्यन्त श्रव्य होने के साथ भावपूर्ण होते हैं। इसी श्रेणी के वीथि नाटक आन्ध्र देश में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित हैं जो बाद को वीथि भागवत नाम से विख्यात भी हुए हैं। उनमें भक्ति और शृङ्गार की प्रमुखता होती है। इस परम्परा के देशी रूपकों में भागवत की कथा मुख्य है। भागवत कथा के प्रदर्शन में कूचिपूड़ि भागवतों (भागवत का अभिनय करनेवालों) को विशेष आदर प्राप्त हुआ है। उन कथाओं में 'पारिजातापहरण' पर्याप्त जनप्रिय हुआ है। कूचिपूडि भागवतों में शास्त्रीय नृत्य प्रधान है। यही कारण है कि वे भरत नाट्य के उत्तम नमूने माने जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि नारी पात्रों का वेष धारण पुरुष ही करते हैं।

यक्षगानों की कथावस्तु मुख्यतः पौराणिक होती है। आधुनिक युग में सामाजिक एवं राजनैतिक घटनाओं को इतिवृत्त बनाने का प्रयत्न हुआ है, किन्तु नब्बे प्रतिशत यक्षगानों की कथावस्तु पौराणिक ही है। पुराण प्रसिद्ध कथाओं को ग्रहण कर यक्षगानों की रचना हुई है। रामायण, भागवत तथा महाभारत की कथाओं के साथ नल, हरिश्चन्द्र इत्यादि पुराण पुरुषों की कथाएँ ही यक्षगानों का आधार बनी हुई हैं। किन्तु युग का प्रभाव यक्षगानों पर भी परिलक्षित होता है। २०वीं शती में पट्लोरि वीरप्पा ने 'क्रोधापुरि रेतु विजयमु' (क्रोधापुरि के कृषकों की विजय) नामक यक्षगान लिखा है जिसमें भारत माता की प्रार्थना, गान्धीजी की स्तुति इत्यादि भी देखी जा सकती है। इसकी कथावस्तु सामाजिक समस्याओं से परिवेष्ठित राजनैतिक समस्याएँ हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि यक्षगान भी युग के अनुरूप अपने स्वरूप को परिवर्तित करके जनता के मनोरंजन का साधन बना हुआ है।

प्राचीन समय में आन्ध्र में रंगमंच का विकास नहीं हुआ था। आन्ध्र देश में जो भी लोकनाट्य थे वे सब चलते-फिरते प्रदर्शन मात्र थे। लोकनाट्य के अभिनेता एक जगह कहीं स्थिर रूप से रहते न थे, गाँव-गाँव घूम-घूमकर अपने नाटकों का प्रदर्शन करना पड़ता था। रंगमंच का विकास बहुत समय तक हो नहीं पाया। वे जिस गाँव में पहुँचते, उस गाँव के मुहाने पर,—चौपाल अथवा मन्दिर के सामने तत्काल ही पण्डाल डालते। उस पण्डाल में ही यक्ष-गानों का प्रदर्शन होता। पण्डाल के सामने और दायें-बायें भी जहाँ तक दृष्टि जाती है, खुला प्रेक्षागार ही होता।

रंगमंच की साधन-सामग्री क्या थी, यों वे प्रदर्शनकर्त्ता आवश्यक सामग्री अपने साथ ले जाते थे, लेकिन वैसे वे जिस किसी भी गाँव में पहुँच जाते, वहीं उन्हें वह सामग्री उपलब्ध होती। मंच अथवा पण्डाल के सामने एक

सफेद परदा लटकाया जाता, यह परदा कोई बड़ा दुपट्टा होता या दो-तीन खादी के दुपट्टों को जोड़कर बड़ा तथा मंच के अनुरूप बना लिया जाता। परदे के दोनों तरफ दो मशाल रख दिये जाते, जिनकी रोशनी में प्रदर्शन होता। क्रमशः मशालों की जगह पेट्रोमाक्स लालटेनों ने ले ली। परदे के पीछे प्रबन्धकर्त्ता या संचालक, गाने में साथ देने वाले, ढोल या मृदंग तथा जन्त्रना देनेवाले होते हैं। परदे के सामने सूत्रधार होता है, वही प्रदर्शन का प्रवर्त्तक होता है।

सूत्रधार पात्रों के प्रवेश की सूचना देता है, पात्रों से वार्त्तालाप कराता है, नेपथ्य में गाने वाले गायकों को टेक पहुँचा देता है, अभिनय के अनुरूप ताल देता है, सन्धि-गद्य का वाचन करता है और समय-समय पर हास्य-प्रसंग करता है।

यक्षगान भाव, राग, ताल इत्यादि के साथ नृत्य, गीत और अभिनय के सुन्दर समन्वय के रूप हैं। समीक्षकों का कथन है कि यक्षगान नृत्य नाट्य सम्प्रदाय के रूपक हैं। इनमें नृत्य मुख्यतः तीन रूपों में प्रस्फुटित हुआ है। गीत के साथ नृत्य तो होता ही है, साथ ही ताल, गमक आदि के अनुरूप दूसरी पद्धति का नृत्य होता है। तृतीय दशा में उद्धत नृत्य अथवा ताण्डव नृत्य होता है। नाट्य-शास्त्र प्रणेता भरत मुनि द्वारा निर्देशित प्राचीन ताण्डव नृत्य के लक्षणों का यक्षगानों में अनुकरण हुआ है। प्राचीन यक्षगानों के आधार पर उनका पुनरुद्धार करने के इच्छुक नाट्य-शास्त्रियों के लिए आवश्यक लोक-नृत्य की सामग्री उनमें उपलब्ध होगी। इस कार्य के लिए उपयुक्त यक्षगान प्राच्य लिखित पुस्तक भाण्डागार में तालपत्रों तथा लिखित प्रतियों में उपलब्ध हैं। उसमें उषा चरित्र, उषा परिणय, कालीय-मर्दनमु आदि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि अब तक प्राप्त यक्षगानों में ओबय मन्त्री कृत 'गरुडाचलम्' अत्यन्त प्राचीन है। कतिपय समीक्षकों का विश्वास है कि कन्दुकूरि रुद्रय द्वारा विरचित 'सुग्रीव विजयम्' उपलब्ध यक्षगानों में प्राचीन-तम है। सुग्रीव विजय के कर्त्ता कृष्णदेवराय के समकालीन माने जाते हैं।

सुग्रीव विजय की कथावस्तु रामायण से गृहीत है। वीर हनुमान का राम-लक्ष्मण के दर्शन से प्रारम्भ होकर वालि-वध तथा सुग्रीव के पट्टाभिषेक के साथ समाप्त होता है। इसमें बालि-सुग्रीव का युद्ध, वालि-वध, तारा का वालि-वध पर दुखी होना और रामचन्द्र की निन्दा करना अत्यन्त मनोहर बन पड़ा है। वीर और करुण रसों के पोषण में कवि को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।

तेलुगु साहित्य में कृष्णदेवराय का युग 'प्रबन्ध युग' नाम से विख्यात है, किन्तु फिर भी इस युग में यक्षगानों के प्रति आदर का भाव था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला में यक्षगानों का प्रदर्शन होता था। बताया जाता है कि कृष्णदेवराय की पुत्री ने 'मरीची परिणय' नामक यक्षगान का प्रणयन किया था। शिलालेखों द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि कृष्णदेवराय की नाट्यशाला में 'तालुकोंड' नामक नाटक का प्रदर्शन होता था और उस युग में नागय्या नामक नट अपने अभिनय के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था।

गराज भक्त शिरोमणि तो थे ही, साथ ही संगीतसार्वभौम थे। 'प्रह्ललाद चरित्र' में भक्ति की परवशता तथा ब्रह्मानन्द साक्षात्कार देखते ही बनते हैं। इष्ट देवता की स्तुति से नाटक शुभारंभ करके पूर्व कवि की स्तुति के बदले प्राचीन भक्त तुलसीदास, रामदास, नामदेव, तुकाराम, जयदेव, श्री नारायण तीर्थ इत्यादि भक्तों का स्मरण किया है। इसमें ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति का गंगा-जमुना संगम हुआ है। यह कृति श्री रामचन्द्र को समर्पित है। प्रस्तावना के पश्चात् दौवारिक तथा सूत्रधार का संभाषण होता है। नाटक का उल्लेख कर प्रह्लाद को नागपाश में बाँधकर समुद्र में फेंकने के वृत्तान्त से प्रारम्भ करते हैं। अन्त में हरि का साक्षात्कार कराते हैं।

नौकाभग अथवा 'कौका विजयम्' भक्ति तथा शृंगार का समन्वित रूप है। गोपिकाएँ बालकृष्ण के साथ यमुना नदी में नौका-विहार के लिए चल पड़ती हैं। सौन्दर्यगर्विता गोपिकाओं का गर्व भंग करते हैं बालकृष्ण। नौका में पानी आता है, उन रन्ध्रों को पहले चोलियों तथा बाद को साड़ियों द्वारा भरने का गोपाल गोपिकाओं को आदेश देता है। अन्त में गोपिकाएँ अपनी देह का अभिमान त्याग प्राणों की रक्षा के लिए वैसा ही करती हैं। इस प्रकार भवसागर के तारणहार कृष्ण अपनी लीला का परिचय देते हैं। इस श्रेणी की रचनाओं में 'लेपाक्षिरामायणमु' अत्यन्त उल्लेखनीय है। इसमें प्रारंभ में आराध्य की प्रार्थना, गुरु-वन्दना, पूर्व कवि-स्तुति, वंश वर्णन है। यह पूर्णतः दृश्य प्रबन्ध है। प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य यक्षगानों की अपेक्षा यह अधिक सफल रहा है।

इस परम्परा में कवि वेंकटदासु कृत 'धेनुकोंड विराट पर्व नाटक' अत्युत्तम है। 'रामदास' भी इसी श्रेणी का एक उत्तम यक्षगान है। इनके अतिरिक्त अन्य लोकप्रिय यक्षगानों में 'किरातार्जुनीयमु', 'गंगा गौरी विलासमु', 'एरुकलवेसं कथ, 'त्रिपुर-संहारम्', दारुवन क्रीड', 'मृत्युंजय विलासम्', 'शिव पारिजातम्', 'गोपाल विलासम्', 'रंगपुरि पारिजात नाटकम्', 'तारा शशांकम्',

'सीता कल्याणम्', 'सुन्दर काण्ड नाटकम्' तथा कंकटि पापराजु कृत 'विष्णु माया विलासम्' सुप्रसिद्ध हैं ।

तंजाऊर के नायक राजाओं के समय में यक्षगान नाटक अथवा दृश्य-प्रबन्ध नाम से भी व्यवहृत होने लगे । क्रमशः यक्षगानों में टेक का स्थान राग लेने लगे । कविता का स्थान पद या गीत लेने लगे । कविता की अपेक्षा गद्य, विषय-क्रम को जोड़नेवाले गद्य के स्थान पात्रों का परस्पर सम्भाषण प्रधान माना गया । उस समय के यक्षगानों में नायक राजाओं के विवाह, शृङ्गार आदि के साथ आस्थान या दरबार का वैभव, उनके राज्य का प्रजा-जीवन, नगर के राजमार्ग पर जुलूस में जाने वाले नायक अथवा राजा को देख नायिका का मोहित हो जाना, विरह-वर्णन आदि की प्रचुरता होने लगी ।

महाराष्ट्र के राजाओं ने भी तेलुगु के यक्षगानों के विकास में अच्छा योगदान दिया था । शहाजी ने (ई० १६८४-१७१२) ने छः-सात उत्तम यक्षगानों की रचना की है, यों तो उनकी संख्या तीस तक बतायी जाती है । इस युग में कथा का सारांश द्विपद छन्द में बतला दिया जाता था, तदनन्तर गणेश की स्तुति, कथा सन्धान, सूत्रधार के प्रसंग, विदूषक इत्यादि की प्रधानता रही । इस प्रकार की रचनाओं में दर्भा गिरिराजु का स्थान उल्लेखनीय है । इस युग में कुरवंजियों का पुनः यक्षगानों में प्रवेश हुआ । कुरवंजि पात्र को प्रधानता दी गयी । मैसूर के कण्ठीरव राजा ने 'आन्ध्र कोरवंजि' नामक एक रूपक की रचना की । त्यागराज आदि की श्रेणी के मेलत्तूरु वेंकट्राम शास्त्री ने जो रचनाएँ कीं वे 'मेलत्तूरु भागवतमेल नाटक' नाम से विख्यात हैं ।

तैलंगाना में १८वीं शती में ही यक्षगानों की रचना प्रारम्भ हुई और १०० के करीब यक्षगान उस प्रदेश में रचे गये । वहाँ पर यक्षगान पर्याप्त लोकप्रिय भी हुए । १७८० में शेषाचल कवि कृत 'धर्मपुरि रामायण', १८३४ में श्री मुद्दय कवि द्वारा रचित 'मंथेन रामायण' काफी प्रसिद्ध हैं । वहाँ के अन्य नाटककारों में गोवर्धन नरसिंहाचार्युलु पट्टें पापकवि, शेषभट्टरु कृष्णमाचार्युलु, आदि के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं ।

आन्ध्र विश्वविद्यालय ने यक्षगानों के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया । अब तक पाँच जिल्द प्रकाशित भो हो चुके हैं । कुल २५ जिल्द प्रकाशित करने की इनकी योजना है । अतः हम विश्वास कर सकते हैं कि संपूर्ण यक्षगानों के प्रकाशन के साथ तेलुगु वाङ्मय की यह विधा समृद्ध हो तेलुगु भारती के लिए अलंकारप्राय होगी ।

९

तेलुगु साहित्य में हास्य

मानव की मानसिक प्रसन्नता को व्यक्त करने वाला साधन ही हास या हँसी है । यह एक शारीरिक प्रक्रिया है । बच्चों की हँसी में उनके मानसिक आह्ललाद का परिचय मिलता है । हास से पूर्ण मुखमुद्रा प्रसन्न चित्त का द्योतक है । हर्ष का बाह्य चिह्न ही हँसी है । किसी विषय को देखते, सुनते या सोचते समय उस विषय के अन्तर्भूत वैपरीत्य, वैषम्य, अतिवास्तविकता, कृत्रिमता इत्यादि गुणों के कारण ही हमें हँसी आती है । हँसने के पूर्व हमें उस हँसाने वाली वस्तुओं के ज्ञान का होना आवश्यक है । वस्तुस्थिति में उत्पन्न विकृत आभास भी हमें हँसा देता है—

> "चाकिवानि तोड जगडाल पड़ लेक
> सिरिगलाडु पट्टु चीरगट्टे
> शिवुडु तोलु गप्पे छी यनि मदि रोसि
> भैरवुंडु चीर पार वैसे ।"

अर्थात्, धोबी की झंझट से मुक्त होने के लिए विष्णु ने पीतांबर धारण करना प्रारम्भ किया तो शिवजी ने चर्म पहनना शुरू किया । भैरव ने वस्त्र ही त्याग दिया; वैसे ही—

> 'शिवुडद्रिनि शयनिंचुटु
> रविचन्दुलु मिंटनुंट राजीवाक्षुं
> डविरलपुग शेषनिपै
> बवलिंचट नल्लिबाध पडलेक सुमा ।"

अर्थात्, शिवजी का हिमाद्रि पर शयन करने, सूर्य तथा चन्द्र का आकाश में रहने व विष्णु भगवान का शेष नाग तल्प पर शयन करने का कारण खटमलों की झंझट से मुक्त होने के लिए ही है । यह चित्रण पढ़ते ही हम हँसी के मारे लोटपोट हो जाते हैं । विकृति हास को जन्म देती है ।

मानव का जीवन सुख-दुःख रूपी अनुभूतिद्वय से प्रारम्भ होता है। बच्चों के हास-रुदन में हमें ये ही दो अनुभूतियाँ दिखाई देती हैं। किन्तु हमारी इच्छा, ज्ञान व क्रियाशक्तियों के विकास के साथ बाह्य विषय की वैविध्यता के साथ आंतरिक सुख-दुःख से पूर्ण अनुभूतियाँ भी जन्म लेने लगती हैं।

हास एक स्थायी भाव है। यही हास्य के रूप में परिणत होता है। काव्यानंद का दूसरा नाम ही रस है। काव्य, नाटक इत्यादि के अध्ययन, श्रवण एवं दर्शन से हमारे हृदयों के भीतर जो अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं तथा जो हमें शुद्ध आनन्द प्रदान करता है, वही आनन्द रस है। उसी आनन्द-अनुभूति को रसानुभूति कहते हैं। जिस भाव को हम अनुभूति में लाकर आनंद पाते हैं, उसी भाव के नाम पर उस रस का व्यवहार करते हैं। यही कारण है, कि कुछ लोगों ने रस के अन्तर्गत एक ही माना है कि वास्तव में रस एक है, वही आनंद का स्वरूप है। स्थायी भावों के आधार पर रस नौ हैं, उनमें हास्य एक है।

हास के लिए आनंद, उद्दीपन एवं विभाव के रूप में लाक्षणिकों ने इस प्रकार बताया है—

'विकृताकार वाक्येष्टं यमालोक्य हासेज्जनः।
तदत्रालंबन प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥'

जिन विकारों के कारण हम किसी व्यक्ति या विषय को देखकर हँसते हैं वह व्यक्ति या विषय हमारे हास का आलंबन है और उसके अन्य विकार उद्दीपन हैं।

वाङ्मय में हास्य के भी भेद हैं। लाक्षणिकों की दृष्टि में साधारण भौतिक हास निम्नकोटि का है। दूसरों को दुखाने वाला मध्यम तथा सब को प्रसन्नता एवं सुख प्रदान करने वाला उत्तम कोटि का हास्य माना जाता है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार आलंबन के प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाला हास्य ही उत्तम हास्य है।

हास्य आलंबनप्रधान रस है। आलंबन के विस्तृत एवं सुस्पष्ट वर्णन से हास का उदय होता है। हास का आश्रय प्रेक्षक ही होते हैं। मुख्यतः हास्य दो प्रकार का होता है : पहला आत्मस्थ और दूसरा अन्यस्थ। आलंबन को देख हँसने वाला आत्मस्थ है, तो अन्यों को हँसते देख उनके साथ हँसना अन्यस्थ है। रीति ग्रन्थकारों ने शृंगार और वीर-रस को काव्य और नाटकों का प्रधान रस माना है। हास्य को सहायक रस के रूप में अंगीकार किया

गया है। हास्य और शृंगार रस के बीच सुन्दर मैत्री है। वैसे ही वीर रस के लिए हास्य सहायक रस के रूप में स्वीकृत है। सच पूछा जाय तो हास्य के बिना शृंगार रस में सरसता नहीं आती। किन्तु असभ्य शृंगार को हास्य के रूप में ग्रहण कर हमारे साहित्य हास्य का उपहास किया गया है।

प्रधानतः नाटक के नायक के नम्र सचिवों में एक विदूषक होता है। 'हास्य प्रायो विदूषकः' बताकर इस पात्र का चित्रण केवल हास्य के लिए करते हैं। नाटक में विदूषक ही नहीं बल्कि कोई भी पात्र हास्य का प्रयोग कर सकता है। वाक्-चमत्कार के द्वारा हास्य का उदय होता है। प्रहसन और शतक-साहित्य में हास्य का विशेष पोषण हुआ है। मुख्यतः कहावतों, लोकोक्तियों, यमक, श्लेष, व्याज-स्तुति, व्याज-निंदा, वक्रोक्ति, अनुकरण इत्यादि के द्वारा हास्य को ध्वनित करते हैं।

भारतीय लाक्षणिकों की दृष्टि में हास्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उनका मत है कि किसी वस्तु में विकृति और आरोपण में हास्य का उदय होता है। पाश्चात्य वाङ्मय में हास्य 'ह्यूमर' और 'विट' नाम से दो प्रकार का माना जाता है। उनका मत है कि ह्यूमर में विकृति सहज होती है और विट में विकृति का आरोप किया जाता है। इनके अतिरिक्त भारतीय साहित्य में और तेलुगु में भी 'पैराडैज' और अधिक्षेप हास्य अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। तेलुगु में इस प्रकार की रचनाओं में श्री पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि कृत 'रावण दम्भीयमु', तिरुपति वेंकटद्वय कृत 'गीरतम्', श्री अनंतपंतुल रामलिंग स्वामी कृत 'शुक्लपक्षम्' अधिक्षेप काव्यों में आदर के साथ लिये जा सकते हैं। श्री जलसूत्रम रूक्मिणीनाथ शास्त्री कृत पैराडैज आन्ध्र में काफी लोकप्रिय हुए हैं।

किसी भी साहित्य में रचित हास्यरस सम्बन्धी ग्रन्थों पर विचार करते समय हम उन ग्रन्थों के लिए आवश्यक लक्षण निश्चित रूप से निर्धारित नहीं कर सकते। हाँ, उसके काव्यों की शैली, घटना—चित्रण इत्यादि के आधार पर हास्य ग्रन्थ का निर्णय किया जा सकता है। तेलुगु के कवियों ने यों तो अनेक रीतियों को हास्य-ग्रन्थों की रचना में अपनाया है। उसमें मुख्यतः पाँच रीतियाँ उल्लेखनीय हैं— १. शब्द सम्बन्धी विकृति पैदा करना, २. अर्थ सम्बन्धी विकृति, ३. कथावस्तु की गति में वक्रता लाकर घटना में विकृति पैदा करना, ४. आलंबन वर्णन और ५. रसाभास पैदा करना।

तेलुगु साहित्य के हास्य का समय परिचय प्राप्त करना है तो उसके दोनों प्रकार के साहित्यों का अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है। प्रथम प्रकार

का लोक-साहित्य और दूसरा मार्ग अथवा ग्रन्थस्थ साहित्य । प्रत्येक जाति के आचार-विचार, रीति-रिवाज इत्यादि का दर्पण उसका साहित्य होता है । अनाहत अथवा अनुश्रुत वाङ्मय जो कि लोक-साहित्य के नाम से प्रचलित है, शिष्ट समाज का आदर भले ही प्राप्त कर चुका हो, परन्तु अनुभूतियों से दोनों के बीच विशेष अन्तर नहीं होता है । तेलुगु में लोक-साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध हुआ है और उसमें हास्य का विशेष स्थान है । पूर्ण रूप से लिपिबद्ध न होने पर भी गत २५-३० वर्षों में इसके उद्धार का विशेष प्रयत्न हुआ है ।

इस साहित्य के श्रवण और अध्ययन से श्रोता एवं पाठकों का मन रसोद्रेक से उछलने लगता है ।

व्यावहारिक जीवन में लोक साहित्य इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता । जन्म-मृत्यु, पर्व-त्योहार, शादी-ब्याह में ही नहीं बल्कि जीवन के पग-पग पर जनपदों में इस साहित्य का व्यवहार है । ढेंकली चलाते, नाव खेते, धान कूटते, खेतों में धान रोपते, कटाई करते, मेलों में, सामूहिक कार्य-कलापों में यह साहित्य लोकजीवन का आलंबन बना हुआ है । मांगलिक कार्यों में जहाँ शिष्ट गीतों का गायन होता है वहाँ अश्लील गीतों का भी । हास्य-रस के अंतर्गत विकृत शब्द-सम्बन्धी होने के कारण अन्य भाषाओं में उसका उसी रूप में अनुवाद संभव नहीं है । फिर भी नमूने के लिए एकाध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

तेलुगु का देशी नाट्य 'भामा कलापम' में से एक उदाहरण लीजिए । हास्यकर्त्ता नायक कृष्ण के हाथों में नायिका को समर्पित करते हुए नायक को उपदेश देता है । तदुपरान्त राधा को समझाता है—

> बाव मरदुलु निन्नु एव्वरेमन्ना,
> कदुरेरंगाकालियकंटलोनपेट्टू
> तोडिकोडलु बिड्ड कूटि केडुस्ते, पीट चेवकातोनु
> पेणतुडगोट्टु
> इरुगु पोरुगुलवारु निन्नेमि यन्ना ,
> यिल्लुतगुबेट्टि मल्लिरावम्मा
> बुद्धुलेरतगदु बालमद्दुले कानि,
> बुद्धुलोच्चेदाक दिद्दुकोवय्या'

अर्थात् हे बेटी ! देवर-जेठों ने तुमसे कुछ कहा तो तकली गरम करके उनकी आँखों में भोंक दो । देवरानी व जेठानी के बच्चे खाने के लिए रोयें तो चौकी

से खोपड़ी उड़ा दो। अड़ोस-पड़ोस वालों ने तुमसे कुछ कहा तो उस घर में आग लगाकर मायके लौटना। हे दूल्हे, यह तो अबोध मुग्ध है, लाड़-प्यार से पली है, इसके समझदार बनने तक सहानुभूति दिखाना।

शिष्ट साहित्य में हास्य प्रारम्भिक युग से उपलब्ध होता है। तेलुगु का प्रथम काव्य महाभारत है। इसका प्रणयन महाकवियों ने किया है। ये तीन महाकवि हैं। नन्नयभट्ट आदि कवि माने जाते हैं। इन्होंने वायु-पुत्र भीमसेन के चित्रण में हास्य का संदर्भानुसार अच्छा पोषण किया है। भीम के जन्म के दसवें दिन जब राजा पांडु, कुन्ती देवी को साथ लिये बच्चे सहित एक पर्वत पर स्थित देव-मन्दिर जा रहे थे, अचानक एक शेर ने उन पर धावा किया। कुन्ती भय-कंपित हो उठी। उसके हाथों से बच्चा भीम पर्वत के पत्थरों पर गिर पड़ा तो वे सभी पत्थर चूर्ण हो गये। इसके वर्णन में कवि ने जिस स्वाभाविकता, विकृति एवं व्यंग्य को ध्वनित किया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

एक दूसरी घटना भी पाठकों को हँसाकर लोट-पोट करने में समर्थ है। कुन्ती देवी द्रौपदी को भीमसेन को खाना खिलाने का तरीका यों बतायी है— भीम का उदय छोटा है। लेकिन वह बलबान है, जरा ज्यादा खिलाओ। इस वाक्य में जो व्यंग्य है, और तेलुगु में जिस चतुरता के साथ कविता में वर्णित है, उसका आनन्द लेते ही बनता है।

ऐसे उदाहरण तेलुगु के गत सहस्र वर्षों से रचित ग्रन्थों में से सैकड़ों की संख्या में दिये जा सकते हैं। परन्तु इस छोटे से लेख में विपुल परिचय संभव नहीं है। अतः हम कुछ चाटूक्तियाँ और नमूने के तौर पर कुछ पद्यों का उदाहरण देते हैं।

तेलुगु के कवि सार्वभौम श्रीनाथ प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने प्रौढ़ कविता में सरसता का भी समावेश किया। उनकी असंख्य चाटूक्तियाँ आज भी उपलब्ध हैं। वे आन्ध्र की पलनाडु सीमा में पयन कर रहे थे, प्यास लगी। उस क्षेत्र में पानी का अभाव था। इस पर श्रीनाथ ने अपने आराध्य शिवजी से प्रार्थना की जो कि हास्य से परिपूर्ण है—

'सिरिगलवानिकि चेल्लुनु
तरुणुल पदियारुवेल दग बेंड्लाडन्
दिरिपेमुन किद्दछरांड्ला
परमेशा गंग विडुमु पार्वति चालुन्'

अर्थात्, धनी व्यक्ति सोलह हजार तरुणियों से भी शादी करें तो भी वह मान्य हो सकता है। (यहाँ विष्णु मुख्यत: कृष्ण की सोलह हजार गोपिकाओं की ओर संकेत) हे ईश्वर, तुम तो भिखारी हो, तुम्हें दो पत्नियों की क्या आवश्यकता है ? गंगाजी को छोड़ दो (मैं अपनी प्यास बुझा सकता हूँ) तुम्हें तो पार्वती पर्याप्त है।

भक्त शिरोमणि महाकवि ने अपने भागवत में शिष्ट हास्य का पोषण किया है। यह वात्सल्य और श्रृंगार रस के चित्रण में सहायक बन कर अत्यन्त सहज रूप में वर्णित है। कृष्ण अवस्था में छोटे हैं, पर बड़ों के कार्य कर बैठते हैं। इस विरोधाभास में स्थित विकृति ही सहज रूप में हास्य का आलंबन बन जाती है। एक दो उदाहरण लीजिए। बालकृष्ण गोपिकाओं के यहाँ खेलने जाते हैं और क्या-क्या करते हैं—

'आडंजनि वीरल पेरु
गोडक नी सुतुडु द्रावि योकयिचुक ना
कोडलि मूतिदुडिचिन,
गोडलु मुच्चन्नुमुनत्त कोट्टे लतांगी'

यशोदा से एक गोपिका शिकायत करती है—"हे लतांगी, देखो, तुम्हारा लड़का खेलने के बहाने घरों में घुस आया और सारा दही पीकर थोड़ा-सा उस घर की बहू के मुँह पर पोत दिया। सास ने यह सोचकर कि उसी की बहू चोर है, उसकी खूब खबर ली।"

एक और गोपिका यशोदा से शिकायत कर रही है—

"नम्मि निदर वोव नापट्टि जुट्टु मा
लेग तोक तोड़ लील गट्टि
वीथुलंदु द्रोले वेलदि नी कोमरुंडु
राचबिड्डडैन रव्व मेले"

हे माई, तुम्हारे पुत्र ने यकीन के साथ सोनेवाली मेरी पुत्री के जूड़े को हमारे बछड़े की पूँछ से बाँध दिया और उस बछड़े को गलियों में खदेड़ दिया।

इसके अतिरिक्त सोमन्ना के उत्तर हरिवंश, जक्कन के विक्रमार्क चरित्र, अल्लसानि पेद्दन्ना के मनुचरित्र, पिंगलि सूरन्ना के कलापूर्णोदय, नंदि तिम्मन्ना के पारिजातापहरणम्, चामकूर वेंकट कवि के विजय विलास, तेनालि

रामकृष्ण के चाटुपद्य, अप्पकवि कृत शशिरेखापरिणयम्, इत्यादि काव्यों में हास्य का अच्छा वर्णन किया है। एक उदाहरण देखिए—

निदुर बोगोट्टु ग्रममुगानेत्ति केक्कु
गलुषत घटिंचु गुंडयु गर्रयु दने
चेति कोनगूर्चु नदिगान जेपनगु ले
वेश्यकुनु नश्यमुनकुनु भेदमिलनु।

अर्थात्, निद्रा को तिलांजलि दिलाकर क्रमशः सर पर चढ़ती है। शरीर और हृदय को भी कलुषित करती है और हाथ में लाठी और घड़ा पकड़ा देती है। अब सूँघनी और वेश्या में अंतर क्या है? अर्थात् दोनों से एक ही प्रकार की हानि होती है। वेश्या के द्वारा अप्रतिष्ठा, धन का सर्वनाश होता ही है। भिक्षा-पात्र और लाठी हाथ में पकड़ा देती है। इस प्रकार दोनों में श्लेष को ध्वनित कर कविद्वय ने उचितज्ञता का परिचय दिया है।

काव्यों में हास्य रस का जैसा पोषण हुआ है, वैसा ही हम गद्य-ग्रन्थ शतक और चाटु कविता में भी पाते हैं। यहाँ पर नमूने के तौर पर कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। शतक कवियों में श्रीकवि चौडप्पा ने हास्य के लिए गालियों की आवश्यकता बतायी है। वह लिखते हैं—

"नीतुलकेमि योकिंचुक
बूताटकदोरक नव्वु पुट्टदु धरलो
नीतुलु बूतुलु लोक
ख्यातुलुरा कुदवरपु कवि चौडप्पा।

उपदेशों का क्या अभाव है? निन्दा और गालियों के बिना इस जगत् में हँसी नहीं होती। नीति, उपदेश, निंदा और गालियाँ तो जगत् की ख्याति के चिह्न हैं।

आगे वही कवि बताते हैं कि दस उपदेश और दस गालियाँ, दस शृंगार-प्रधान कविताएँ सभा में जो पढ़ता है, वही श्रेष्ठ कवि माना जाता है।

शतक कवियों में संत वेमना का अपना विशिष्ट स्थान है। विस्तार के भय से इनके पद्यों का सारांश मात्र देते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

१. क्षीर-सागर में शयन करने वाले विष्णु गोपिकाओं के घरों में दूध चुराने क्यों गये? दूसरों की वस्तुएँ सब को भली लगती हैं।

२. गुफाओं में जाकर लोग गुरु को ढूँढने लगते हैं, यदि हिंस्र पशु उसमें से निकला तो मुक्ति का मार्ग अवश्य वह जल्दी दिखा देता है।

३. लोभी को मारने के लिए इस जगत् में किसी दवा की जरूरत नहीं उसका तो उपाय कुछ और है। उससे धन माँगिएगा तो वह जल-भुनकर मर जायेगा।

४. बकरी के गल-थनों के पीने से भूख नहीं मिटती, केवल मात्र आशा ही है वैसे ही लोभी व्यक्ति से धन माँगने पर लाभ क्या है?

तेलुगु में भाव कविता के उदय होने पर उसका परिहास करते हुए एक कवि ने लिखा है। भाव कविता हिन्दी में छायावादी कविता कहलाती है। भाव कवि का कथन है—

भाव कवि के लिए तेलुगु में पढ़ना-लिखना जान लेना काफी है। अंग्रेजी ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। देशाटन करते रहना चाहिए, नौकरी के पीछे उसे पागल नहीं रहना है। कल्पना की उड़ाने भरनी हैं और प्राचीन कवियों की निन्दा करनी है। भाव-गीतों का गान करते रहना है। अप्पकवि (वैय्याकरण और रीति ग्रन्थकार) के लक्षणों की उपेक्षा करनी है और केशों को इस तरह बढ़ाना है कि वे कर्णद्वय को ढँक दें। नयी वेश-भूषा में जनता के सामने आना है। यही संक्षेप में हमारी समिति के सदस्यों के नियम हैं।

स्वर्गीय भोगराजु नारायणमूर्ति का "पंडुग कट्नमु" (पर्व का उपहार) चार आश्वासों वाला विशुद्ध हास्य-ग्रन्थ है। इसमें से सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आज की दहेज-प्रथा की कड़ी आलोचना करते हुए कवि ने एक स्थान पर बतलाया है कि एक युवक ने विवाह के समय हजारों रुपये दहेज लेकर सास-ससुर को राह का भिखारी बना दिया और पत्नी को ससुराल में छोड़ कर ऊँची शिक्षा का बहाना बतलाकर लन्दन चला गया। आज दस साल बीत रहे हैं, वह लौटकर नहीं आया है। लोगों का कहना है कि वहाँ किसी रखेली के साथ रंगरेली करते हुए भारतीय सभ्यता से भ्रष्ट हो गया है।

इसके अतिरिक्त श्री हट्टि नरसिंहम् कृत "प्रयास शाप विमोचनम् श्री वीरेशलिंगम् के प्रहसन, श्री चिलकमर्ति नृसिंहम् के गणपति और दुंदुभि, श्री गुरजाड अप्पाराव का कन्याशुल्कम्, श्री वेदुम वेंकटराय शास्त्री का प्रतापरुद्रीयम् श्रीपाद सुब्रह्मण्यम् की कहानियाँ, श्री भमडिपाटि कामेश्वर राव कृत प्रहसन, कहानियाँ और लेख, श्री विश्वनाथ कविराज कृत एकांकी,

श्री मल्लादि वेंकट कृष्ण शर्मा के प्रहसन, श्री चिन्ता दीक्षितुलु की हास्य कथाएँ तेलुगु हास्य रस प्रधान साहित्य में आदर के साथ गिनी जाती हैं।

परन्तु श्री पानुगंटि लक्ष्मीनृसिंह राव के निबन्ध संग्रह "साक्षी" के छः भाग, उन्हीं के "वृद्ध विवाह", "कंठाभरण" नाटक, श्री मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री कृत "बारिस्टर पार्वतीशम्", श्री मुनि माणिक्यम् नरसिंह राव की कहानियाँ एवं ममिडि कामेश्वरराव के प्रहसनों पर आन्ध्रवासियों को अभिमान है। हास्यप्रधान साहित्य में इनकी रचनाएँ किसी भी भाषा की समता कर सकती हैं।

१०

तेलुगु काव्य में राष्ट्रीय भावना

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की उज्ज्वल पृष्ठभूमि के दर्शन क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में किये जा सकते हैं। इस विशिष्ट मोर्चे पर तेलुगु ने, जो साढ़े छः करोड़ से भी अधिक लोगों की भाषा है और अपनी असीम मधुरता के कारण "पूर्व की इतालवी" कहलाती है, कीमती योग दिया है। राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से तेलुगु के मनीषी लेखकों ने साहित्य और जनता के बीच की कृत्रिम दूरी को मिटाने के साथ-साथ हमारी आजादी की लड़ाई का पथ भी प्रशस्त किया। राजा-रानी की जगह सामान्य जन एवं उनके सुख-दुःख इनकी रचनाओं के प्रधान विषय बने। स्वाधीनता के युग ने तेलुगु के साहित्य को ओजस्वी तो बनाया ही, उसके द्वारा पूरे प्रदेश में नये सिरे से प्राण फूंके तेलुगु साहित्य के इसी रूप की यह एक रोचक झाँकी।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस की स्थापना के साथ ही इस देश में नये सिरे से राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात हुआ। तब देश भर में समाज-सुधार के आन्दोलन की जो प्रबल लहर बही, उससे आन्ध्र भी अछूता नहीं रह सका।

साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और कुछ अंशों में धार्मिक क्षेत्र में भी नवीन धारा प्रवाहित हुई और क्रांति की भावनाएँ उभरीं। परिणाम-स्वरूप देशवासियों में नयी चेतना और जागृति की नयी लहर दौड़ पड़ी।

तेलुगु साहित्य में यह भावात्मक क्रांति तीन महानुभावों के द्वारा संपन्न हुई। श्री गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने भाषा के क्षेत्र में मौलिक क्रांति उपस्थित की; श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने समाज-सुधारवादी आन्दोलन को जन्म दिया और गुरजाड़ अप्पाराव ने उपर्युक्त दोनों आन्दोलनों को आत्मसात् करते हुए नये विचार दिये। इसी समय से तेलुगु कविता में भावात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा।

गुरजाड़ अप्पाराव ने तेलुगु काव्य को नयी वस्तु, नया छंद, नये भाव और नयी शैली प्रदान की तत्कालीन युग की सामाजिक प्रगति और परिवर्तन के चिह्न इनकी कविता में परिलक्षित होते हैं ।

तेलुगु काव्य में राष्ट्रीय भावना सर्वप्रथम अप्पारावजी की रचनाओं द्वारा ही मुखरित हुई । ऐसा यदि कहा जाए, तो गलत नहीं होगा । अप्पाराव ने अपने काव्य का आदर्श नीचे की पंक्तियों में व्यक्त किया है :—

"आकुलंदुन अणगि मणगि
कवित कोयिल पलुक वलनोय्
पलुकुलनु विनि देशमं—
दभिमानमुलु मोलकेत्त वलेनोय् ।"

अर्थात्—पत्तों की आड़ में छिपी रह कर कवित्तरूपी कोयल कूक उठे और उसकी वाणी सुनकर जनता में देश-प्रेम की भावनाएँ जागृत हो जाएँ ।

अप्पाराव की देशभक्ति आदर्श रही । उन्होंने "देशभक्ति" नामक कविता में अपने भावों को ओजस्वी रूप में अभिव्यक्त किया है—

"देशमुनु प्रेमिंचुमन्ना
मंचियन्नदि पेंचुमन्ना
ओट्टि माटलु कट्टिपेट्टोय्
गट्टि मेल् तलपेट्टवोय् ।"

अर्थात्—देश से प्यार करो' अच्छाई को बढ़ाओ, बेकार की बकवास बन्द, करो, जन-हित के लिए कोई ठोस कार्यक्रम बनाओ ।

आगे ये कहते हैं—

"हे भाइयों, श्रम करो,
मांस-मज्जावाला व्यक्ति ही मानव है ।
मांस-मज्जा खाद्य-पदार्थों से निर्मित होते हैं ।
खाद्य-पदार्थों के उत्पादन के लिए श्रम करना आवश्यक है ।
विभिन्न विद्याओं और कलाओं का अध्ययन करो ।
देश को समृद्ध बनाओ ।
विद्याओं (के क्षेत्र) में ही स्पर्धा की भावना बढ़ाओ ।
व्यर्थ का कलह न बढ़ाओ ।
देश-प्रेम का ढोंग रचकर गप्पें हाँकते न रहो ।
जनता के हित के हेतु कोई महत्वपूर्ण कार्य कर दिखाओ ।
अपने स्वार्थ को त्यागकर पड़ोसी की सहायता करो ।

देश के माने मिट्टी नहीं है, देश के माने मानव हैं ।
चाहे धर्म विभिन्न प्रकार के क्यों न हों, किन्तु हृदय एक हो
तभी इस जगत् का कल्याण होगा ।
देश रूपी सुन्दर वृक्ष, प्रेम रूपी पुष्पों को मंजरित करें
और मानव के स्वेद से सिंचकर धरती स्वर्णिम फसल
उगल उठे ।''

जातीय और राष्ट्रीय भावनाओं को एक साथ ध्वनित करने वाले आचार्य रायप्रोलु सुब्बाराव का भी तेलुगु काव्य में कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । आपने जनता को प्रबुद्ध करने वाले कई गीत ''उद्‌बोध'' शीर्षक से लिखे हैं जो राष्ट्रीय गीतों का काम दे रहे हैं । उनका निम्नलिखित गीत बहुत ही विख्यात है—

''ए देश मेगिना एन्दु कालिड़िना
ए पीठ मेक्किना एवरेदुरैना
पोगडरा नी तल्लि भारतिनि
निलुपरा नी जाति निंडु गर्वम्मु
लेदुरा इटुवंटि भूदेवि येंदु
लुरुरा मनवंटि धीरुलिकेन्दु
अवमानमेलरा अनुमानमेलरा
भारत पुत्रडनंचु भक्तितो पलुक !''

भावार्थ—चाहे तुम किसी भी देश में पग रखो, चाहे किसी भी आसन पर क्यों न विराजमान हो जाओ, चाहे किसी से भी तुम्हारा सामना हो जाए, तुम अपनी माता भारत की स्तुति करो, अपनी जाति के अभिमान की रक्षा करो । हे भाई मेरे ! ऐसी भू माता अन्यत्र नहीं है । हमारे जैसे धीर-वीर भी कहीं नहीं हैं । अपने को भारत पुत्र कहलाकर सभक्ति ऐसा घोषित करने में तुम्हें सन्देह क्यों ?

आगे कहते हैं—

''ऐ पूर्वपुण्यमो एक योग बलमो
जन्मिंचिनाडवी स्वर्ग खण्डमुना
ए मंचि पूवुलनु प्रेमिंचिनावो
निनु मोसे ई तल्लि कनक-गर्भमुना
पोलमुल रत्नालु मोलिचायि रा इट
वार्धिलो मुत्यालु पंडाइरा इंदट
पृथ्वि दिव्योषधुलु पिदिकेरा मनकु !''

अर्थात्—न जाने किस पूर्वजन्म के पुण्य और योग के बल से तुम स्वर्गतुल्य इस भू-भाग में जन्म ले चुके हो। तुमने किन सुन्दर सुमनों से प्यार किया होगा जिसके फलस्वरूप इस माता ने तुम्हें अपने स्वर्णगर्भ में ढोया है। यहाँ के खेतों में रत्न उगे हैं, सागर में मोती पैदा हुए हैं। पृथ्वी ने (यहाँ) दिव्य औषधियों को निचोड़ा है।

ऐसी भूमि में पैदा होने का तुम्हें अभिमान होना चाहिए। इसमें सन्देह और अपमान अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी भाँति आचार्य रायप्रोलु ने अपनी मातृभाषा की माधुरी पर विमुग्ध होकर उसकी प्रस्तुति का गान जिन शब्दों में किया है, वे गुनगुनाने योग्य हैं—

> ''ए प्रफुल्ल पुष्पंबुल नीश्वरुनकु
> पूज सल्पितिनो येनु पूर्वमन्दु
> कलदयेनि पुनर्जन्म कलुगनाकु
> मधुर-मधुर मैन तेनुगु मातृभाषा।''

अर्थात्—मैंने किन विकसित सुमनों से प्राचीन काल में ईश्वर की उपासना की थी, ज्ञान नहीं, इसी के कारण मुझे इस जन्म में मातृभाषा के रूप में तेलुगु उपलब्ध हुई है। मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर से यही निवेदन करता हूँ कि यदि मुझे पुनर्जन्म प्राप्त हो तो अत्यंत मधुर तेलुगु ही मातृभाषा के रूप में (मुझे) प्रदान करें।

राष्ट्रीयता का बिगुल

देश भर में राष्ट्रीय आन्दोलन का बिगुल बज उठा। उस राष्ट्रीय यज्ञ के लिए आन्ध्र वासियों ने भी एक ओर समिधाएँ दीं, तो दूसरी ओर १९१३ ई० में से पृथक आन्ध्र प्रदेश की स्थापना का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। फिर भी प्रान्तीयता की इस भावना को राष्ट्रीयता के मार्ग में सुब्बाराव ने बाधक बनने न दिया। आपने वर्ण वर्ग, जाति, धर्म इत्यादि संकुचित भेद भावों का बड़ी निर्भीकता के साथ खंडन किया। निम्न पंक्तियाँ इनके विशाल दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए काफी हैं—

> ''कुलमु दडवक, पोलिमेर गोल पड़क
> बोयवले तल्लि पल्लकी मोयुमांध्र।''

हे आन्ध्रवासी! जाति, वर्ण आदि विभेदों की सीमा में न जाकर एक कहार की भाँति अपनी माता की पालकी ढोओ।

सुब्बाराव जहाँ आन्ध्र के प्राचीन वैभव का स्मरण दिलाकर भविष्य

को अतीत के समान स्वर्णिम बनाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वहाँ वर्तमान की पतनावस्था पर भी खेद प्रकट करने से नहीं चूकते; जैसे—

"कृष्णा की तरंगों पर कदम रख
जब आन्ध्र की नौकाएँ नृत्य करती
थीं,
जब क्षेत्रीय साहित्य रूपी दीपकों के
द्वारा आन्ध्र का कोना-कोना
आलोकित था,
रमणीय शिल्प संसार में आन्ध्र की
प्रवीणता प्रतिस्पर्धा कर रही थी,
जब समर-भूमि में सेना-व्यूह की
विजयी पताकाओं के नीचे आन्ध्र का
पौरुष अपने दर्प का परिचय दे
रहा था,
उसका अवलोकन कर प्रसन्नतावश
सिर चालन करते
अभिमान के साथ आन्ध्र के युवक-
युवतियाँ शांति का अनुभव करेंगे,
तब तक हमें विराम नहीं है
और न यह युद्ध की पोशाक उतारने
का समय ही है !"

एक अन्य छंद में आन्ध्रवासियों के तेज एवं पौरुष का परिचय कवि इन शब्दों में देते हैं—

"जब कोडवीडु के रेड्डी युवक कुदा-
लियों को पिट्टुवे के डंठलों की
भाँति झुकाकर उनमें गाँठें लगा
देते थे
पलनाटि के वीर योद्धा बड़े-बड़े
पहाड़ों को नवनीत के दंशों के
समान तोड़-तोड़ कर चकनाचूर
कर डालते थे
अद्दंकि के वीर भटों ने तालाब के
छेदों से बहनेवाले प्रवाह को इस तरह रोका

> था जैसे शिवजी ने गंगा की धारा को
> रोका
> जब तेलंगाना के भटों ने विशाल
> शिला के कपाटों को अपने घूसों से
> तोड़ डाला था
> हे आन्ध्रवासी ! देखो तो सही, ऐसे
> बलि इस आन्ध्र भूमि में पैदा हुए हैं
> और उन लोगों ने विजय कन्या का
> वरण किया था
> ऐसी शेरनी का पेट अब चीटियों
> का बिल बन गया है
> अतः तुम अपने आलस्य को त्याग
> दो।"

गाँधीजी के आगमन के साथ आन्ध्र प्रदेश में राष्ट्रीय भावना और भी प्रबल हो उठी। १९०७ में गोदावरी मण्डल महासभा का आयोजन हुआ था। श्री विपिन चन्द्र पाल इसमें प्रधान वक्ता थे। उस सभा में चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम ने, जो "आन्ध्र के मिल्टन" के नाम से विख्यात रहे, एक छंद गाया था, जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण का परिचय मिलता है :

> "भारत खंडंबु चक्कनि पाडियावु
> हिन्दुवुलु लेगदूडलै एड्चुचुंड
> तेल्लवारनु गड्डुसरि गोल्लवारु
> पिदुकुचुन्नारु मूतुलु बिगिय कट्टि"

अर्थात्—भारतवर्ष एक सुन्दर दुधारू गाय है, हिन्दू सब उसके बछड़े बन रुदन कर रहे हैं। गोरे नामक चतुर ग्वाले इन बछड़ों के मुँह बाँधकर गायों का दूध दुह रहे हैं।

यह कविता सुनकर गोरे अफसर कवि पर अत्यंत कुपित हुए, परन्तु डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने उस छंद में श्लेष घटित या ध्वनित कर उन्हें शांत किया था। "तेल्लवारनु" शब्द का अर्थ "गोरे" और "सबेरा" दोनों होता है।

नवयुग के उद्गाता

"कवि सम्राट" विश्वनाथ सत्यनारायण के कण्ठ से राष्ट्रीयता का स्वर जिस रूप में मुखरित हुआ है, वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। प्राचीन आन्ध्र साम्राज्य के वैभव की कहानी के स्मरण मात्र से उनका हृदय पुलकित हो उठता है।

आन्ध्र की महिमा के प्रसंग में कवि विश्वनाथ ने "आन्ध्र पौरुष" तथा "आन्ध्र प्रशस्ति" नामक दो खंडकाव्यों का प्रणयन किया है। "झाँसी की रानी" और "कुमाराभ्युदयम्" देशभक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम को उद्बोधित करने वाले इनके दो दूसरे अनुपम काव्य ग्रन्थ हैं।

आन्ध्र की इसी परम्परा में कवि कोकिल दुव्वूरि रामिरेड्डी का योगदान स्मरणीय है। इनके द्वारा विरचित प्राय: प्रत्येक काव्य में राष्ट्रीय भावनाएँ ओतप्रोत हैं। विशेषकर खंडकाव्यों में यह भावना प्रबल रूप में पायी जाती है।

रामिरेड्डी ने "स्वतंत्र रथम" शीर्षक कविता में स्वतंत्रता देवी का साक्षात्कार ही किया है। अपनी "नैवेद्य" कविता में ये कहते हैं—

"प्रोद्दुपोड्डुपुन नी पाद पूज कोरकु
कविनि तेच्चिति दोसिट गन्नेरुपूलु
बलिवितर्दिक निरतंबु वेलुगुनट्टुल
हृदयपु सुगंधदीप मर्पितु गोनुमु।"

अर्थात्—सूर्योदय के समय तुम्हारे चरणों की पूजा करने के हेतु, मैं (कवि) अपनी अंजलि में कर्णर के पुष्प लेकर प्रस्तुत हुआ हूँ, लो, निरंतर प्रज्ज्वलित दीप को भी समर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो।

इस प्रकार ये अपने हृदय के सुरभित सुमनों को अर्पित कर धन्य हो गये।

"गौतमी कोकिल" नाम से विख्यात श्री वेदुल सत्यनारायण शास्त्री ने अपनी राष्ट्रीय भावना का पुष्प की अभिलाषा के माध्यम से भलीभाँति अभिव्यक्त किया है, जो सहज ही हमें माखनलाल चतुर्वेदी "एक भारतीय आत्मा" की "फूल की चाह" की याद दिलाती है। रचना इस प्रकार है—

"नाकु, दलंपुलेदु···
....

नीचपु दास्यवृत्ति मन
नेरनि शुरत मातृदेश से

वाचरणमुनं दसुवु
लर्पण सेसिनवारि पार्थिव
श्री चेलुवारुचोट, तद
स्थ्रग्र्‌चुलन विकसिंचि, वासनल्
वीचुचु रालिपोवग व
लेन, तदुदात्त समाधि मुक्तिकन्"

अर्थात्—रमणियों की वेणियों में गुंथे जाने अथवा प्रिया के कण्ठ में सुशोभित हो इठलाने की मेरी कामना नहीं है। मैं चाहता हूँ कि नीचतापूर्ण दासता के प्रति विद्रोह करके स्वतंत्र होने की अभिलाषा से जिन वीरों ने मातृभूमि के पवित्र चरणों में अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए प्राणों की आहुति दी, उनका अवशेष जहाँ अपने यश का परिचय दे रहा हो, वहाँ पर विकसित हो अपने सौरभ को बिखेरते हुए उस उदात्त मृण्मय समाधि पर झर जाऊँ।

पुष्प की यही आकांक्षा कवि के हृदय की अभिलाषा है।

इसी परम्परा में श्री तुम्मल सीतारामर्मूति, जी० जाषुवा, राल्लपल्लि अनंत कृष्ण शर्मा, मल्लमपल्लि, गडियारम, दर्भा, मल्लवरपु नालमकृष्णाराव आदि के नाम उदार के साथ लिये जा सकते हैं। इनके राष्ट्र गान, आत्मकथा, उदय-गान, पेनुगोंड लक्ष्मी, पेनुकोंड, हंपीक्षेत्र, शिव भारतमु, राणा प्रताप चरित्र इत्यादि काव्यों ने आन्ध्र प्रदेशीय जनता को प्रबुद्ध, प्रोत्साहित और प्रेरित किया। गीतों के रूप में इन भावनाओं का अपेक्षाकृत अधिक प्रचार-प्रसार हुआ। ऐसे गीत अनगिनत हैं। बसवराजु अप्पारावु, गरिमेल्ल सत्य-नारायण और देवुलपल्लि कृष्ण-शास्त्री के गीत प्राय: प्रत्येक आन्ध्रवासी की जबान पर चढ़कर अमर हो गये हैं, ऐसा यदि कहा जाए तो एकदम गलत नहीं होगा।

गाँधी गान

बसवराजु अप्पाराव महात्मा गाँधी के अनोखे व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उनके अन्त:स्तल से उस महामानव की प्रशस्ति में एक अपूर्व गीत यूँ प्रस्फुटित हुआ—

"कोल्लायि गट्टितेनेमि
मा गांधि मालडै तिरिगितेनेमि
वेन्नपूस मनसु कन्नतल्लि प्रेम

पंडंटि मोमु पै ब्रह्म तेजस्सु
नालुगु परकल पिलक नाट्यमाडे पिलक
नालुगु वेदाल नाण्यमेरिगिन पिलक
बोसिनोर्विप्पुते मुत्याल तोलकरि
चिरुनव्वु नव्विते वरहाल वर्षमे
चकचका नडिस्ते जगति कंपिचेनु ।''

माने—हमारे गांधीजी अंगोछा पहने तो क्या, हरिजन बन फिरने से क्या ? उनका मन मक्खन जैसा (कोमल) है, उनका प्रेम माता का-सा है। उनके मुखमण्डल पर ब्रह्म तेज शोभायमान है। उनकी चोटी में चार ही बाल हैं, पर वह चोटी नाचना (औरों को नचाना) जानती है। चारों बाल चारों वेदों के सार से अभिभूत हैं। बापूजी यदि अपने पोपले मुँह को खोलते हैं तो उसमें से मोतियों की बौछार हो जाती है। यदि वे मुस्करा पड़ते हैं तो रत्नों की वर्षा हो उठती है। अगर वे जल्दी-जल्दी पग पर डग धरने लगते हैं तो जगत ही काँप उठता है।

इस प्रकार के असंख्य मधुर एवं पुलकित करने वाले भावों को गीतों का रूप देकर आन्ध्र के कवियों ने तेलुगु भाषा-भाषियों में उष्ण रुधिर का संचार ही नहीं किया, देश के प्रति उनमें अपार प्रेम भी जगाया।

गरिमेल्ल सत्यनारायण जैसे कवियों ने अंग्रेज सरकार के प्रति जन-असंतोष एवं विरोध प्रकट करते हुए अपने स्वर को अधिक विद्रोही बनाया। इनका निम्नलिखित गीत बहुत ही जनप्रिय हो चुका है—

''माकोद्दु ई तेल्ल दोरतनमु
नूट नलुवदि नालुगु
नोटिकि तगिलिचि
माटलाडवद्दंटाडु मम्मु,
पाट पाडवद्दंटाडु मम्मु,
टोपी तीसि वीपुन बादुताडु—
माकोद्दु''

हमें गोरों का यह शासन नहीं चाहिए। वह एक सौ चालीस की धारा लगाकर हमारा मुँह बन्द करता है और कहता है, तुम बात मत करो, गीत मत गाओ। उल्टे जबर्दस्ती गाँधी टोपी हमारे सिर पर से उतार कर पीठ पर

कोड़ों की बौछार करता है। हम इस शासन से तंग आ गये हैं। यह शासन हमें नहीं चाहिए, नहीं चाहिए"।

राष्ट्रीय भावना को मुखरित करने वाले अन्य प्रमुख तेलुगु कवियों में श्री श्री, नारायणबाबू, जलसूत्रम्, काटूरि, पिंगलि आदि हैं। भारत के स्वतंत्र होने के बाद यह भावना और भी यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हुई है। सर्वश्री मधुना पंतुलु सत्यनारायण शास्त्री कृत "आन्ध्र पुराणम्" के दो भाग, श्री दाशरथी कृत "महादोदयम्" और नारायण रेड्डी कृत "नागार्जुन सागरमु" नयी तेलुगु काव्य रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

"आन्ध्र पुराणमु" के प्रथम खंड में इक्ष्वाकु-वंशी नरेशों से लेकर काकतीय काल तक की कथा वर्णित है। बौद्धयुगीन वैभव, शिल्प, चित्रकला इत्यादि समर्थ भाषा एवं सशक्त शैली में तेलुगु काव्य में वर्णित है।

आन्ध्र भू-भाग को दो टुकड़ों में बँटता देख श्री दाशरथी को दुःख हुआ और उन्हें एक ही शासन के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने निजामशाही के विरुद्ध विद्रोह का जो शंखनाद किया, वह ऐतिहासिक महत्व रखता है। तेलंगाना में जब एक करोड़ के लगभग तेलुगु भाषी निजाम के शासन के अन्तर्गत थे, तब कवि ने उनके प्रति अपनी भावनाएँ इन शब्दों में व्यक्त की थी :

"कोटि तुम्मुल कड रेंडु कोट्ल तेलुगु
टन्नलनु गूर्चि वृत्तांतमंदजेसि
मूडु कोट्ल नोक्कटे मुडि बिगिंचि
पाडिनाडमहान्ध्र सौभाग्य नीति।"

एक करोड़ छोटे भाइयों के समक्ष दो करोड़ बड़े भाइयों का समाचार रखकर तीन करोड़ तेलुगु भाषा-भाषियों को एक ही प्रेम-सूत्र में बाँध कर मैंने महान आन्ध्र के सौभाग्य के गीतों का गान किया है।

इस परम्परा में आन्ध्र भर में राष्ट्रीय गीत के रूप में गान किये जाने-वाले दो-चार गीतों का यहाँ उल्लेख न किया जाए तो यह लेख अपूर्ण ही माना जाएगा। ऐसे गीतों में श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री कृत

"जय जय जय प्रिय भारत जनयित्री !"

तथा

"युव पताक, नव पताक
अरुणारुण जय पताक..."

प्रमुख हैं, जो आन्ध्र भर में प्रत्येक सभा के प्रारम्भ एवं अन्त में गाये जाते हैं।

इसी भाँति—

"मा तेलुगु तल्लिकि मल्लेपू दंड
मा कन्न तल्लिकि मंगलारतुलु"

अर्थात्—हमारी तेलुगु माता को चमेली के पुष्पों की माला अर्पित है, हमारी जनन धात्री माता के लिए मंगलमय आरती है।

इस गीत में अनेक उदात्त भाव हैं। इस प्रकार तेलुगु काव्य-साहित्य राष्ट्रीय भावनाओं से पुष्ट, संपन्न एवं सुशोभित हो भारत की राष्ट्रीय एकता में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

११

तेलुगु वाङ्मय में राम चरित

भारतीय काव्यों में ही नहीं अपितु विश्व के काव्य-ग्रन्थों में भी रामायण आदि-काव्य माना जाता है और वाल्मीकि आदि-कवि। रामायण भारतीयों के लिए आदर्श ग्रन्थ है। वह इतिहास है, आध्यात्मिक ग्रन्थ है, एक क्या, समस्त विषयों का ज्ञान-कोष है। उसमें धर्म, नीति, परिवार, राज्य एवं सामाजिक व्यवस्था इत्यादि समस्त बातों का चित्रण है और भारतीय संस्कृति, वाङ्मय तथा ज्ञान-विज्ञान का वह काव्य-भण्डार है। उसके पात्र आदर्श गुणों से पूर्ण एवं उत्तम हैं। राम जैसे सम्राट, सीता जैसी पत्नी, लक्ष्मण जैसे भ्राता, हनुमान जैसे सेवक, सुग्रीव जैसे सखा, भरत जैसे भक्त तथा दशरथ जैसे करुणामूर्ति विश्व के अन्य वाङ्मय में दुर्लभ हैं। ऐसे उत्तम काव्य की सृष्टि करके वाल्मीकि धन्य हो गये हैं :

रामायण काव्य की उत्पत्ति का हेतु क्रौंच मिथुन की कथा है :

"मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगम श्शाश्वती स्समाः।
यत् क्रौंच मिथुना देकमवधीः काममोहितम् ॥"

महर्षि वाल्मीकि के मुँह से उक्त श्लोक के बहिर्गत होने के पूर्व वैदिक वाङ्मय को छोड़ लौकिक वाङ्मय में छन्दोबद्ध वाणी नहीं थी। महर्षि स्वयं इस वाणी पर चकित थे कि ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें आदिकवि कह कर आशीर्वाद दिया और राम-चरित लिखने का आदेश दिया। तदनंतर नारद मुनि द्वारा रामचन्द्र जी के उदात्त गुणों का वर्णन सुनकर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की।

रामायण केवल काव्य मात्र नहीं है, वह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ भी है। राम चरित के महत्व का वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्री मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में सुनिए—

"राम तुम्हारा वृत्त स्वयं काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है॥"

हिन्दी में तुलसीदास रचित "रामचरितमानस" काफी लोकप्रिय है। तुलसीदास उच्चकोटि के भक्त, प्रकाण्ड पंडित तथा कवि थे। उनकी कृतियों से हमें इस बात का भलीभाँति परिचय मिल जाता है। तुलसी भावुक थे और उनका लोकानुभव भी परिपूर्ण था। यही कारण है कि उन्होंने जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों का चित्रण चित्र बड़ी मार्मिकता एवं योग्यता के साथ किया है। तुलसी ने वाल्मीकि रामायण से कथा मात्र ग्रहण कर ली और उसे अपने ढंग से लोकभाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। वे जिन घटनाओं से अधिक प्रभावित हुए, उनका वर्णन कुछ विस्तारपूर्वक तथा उनमें मग्न होकर किया है। वाल्मीकि ने रामचन्द्रजी को अवतार पुरुष नहीं माना, बल्कि कालांतर में रामचन्द्र अवतार पुरुष हुए। तुलसी तो राम के अनन्य उपासक तथा सेवक थे। उन्होंने समस्त जगत् को सीताराममय देखा :

सिया राम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।।

भक्ति के आवेश में तुलसी ने काव्य के लक्षणों का निरादर नहीं किया। काव्य की प्रौढ़ता का उन्होने सदा ध्यान रखा और औचित्य तथा पात्रों के चरित्रों की परिस्थिति का अपने आदर्शानुकूल पोषण किया। कवि का अपने पात्रों के प्रति जिस प्रकार भाव होता है तथा जिस आदर्श को कवि अपने काव्य द्वारा समाज के सम्मुख उपस्थित करना चाहता है, उसी के अनुरूप अपने पात्रों की सृष्टि करता है। यही कारण है कि एक ही कथावस्तु को ग्रहण करने पर भी विभिन्न कवियों की रचनाओं में भिन्नता दिखायी देती है। साथ ही साथ कवि जिस समाज में निवास करता है, उस युग की देश-कला परिस्थितियों का प्रभाव भी काव्य में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में परिलक्षित होता है।

केशवदास केवल मात्र पंडित और आचार्य थे। वे भक्त नहीं थे। जितने अंशों में वे पंडित थे, उतनी मात्रा में वे कवि नहीं थे। पंडित और आचार्य में कवि की अपेक्षा तार्किक विचारों की अधिक प्रधानता होती है। इस कारण से उनकी रचनाओं में कलापक्ष का भले ही विकास हो किन्तु हृदय-पक्ष कमजोर पड़ता है। तुलसी की रचना में कहीं-कहीं इन दोनों पक्षों का संतुलन होने पर भी मार्मिक स्थलों में हृदय-पक्ष का पलड़ा भारी दिखायी देता है। वे भक्त होने के कारण उस भावुकता में बहते दिखाई देते हैं। ऐसे प्रसंग तुलसी रामायण में अनेक मिलते हैं। केशव ने जहाँ अपने पात्रों द्वारा वार्त्तालाप कराया है, वहाँ पर उनकी तार्किक शक्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। गिद्ध और रावण का संवाद पढ़ते ही बनता है। लेकिन तुलसी की कृति में

राम और भरत का मिलन, राम का वन गमन, केवट-प्रसंग, जनकपुर में स्वयंवर से पूर्व सीताजी का रामचन्द्र को देखना, लक्ष्मण का शक्ति लगने से मूर्च्छित होना, इत्यादि प्रसंग अत्यंत उत्तम एवं नूतन बन पड़े हैं। इन प्रसंगों के आधार पर हम अन्य रामायणों से मेल खाने वाली घटनाओं की समानता एवं असमानताओं पर विचार करेंगे।

तेलुगु में राम-चरित को लेकर अनेक काव्य, शतक एवं लोक-कथाएँ रची गयी हैं। कुछ पंडितों एवं कवियों ने मूल कथा को आधार बनाकर अनुवाद-कार्य मात्र किया तो कुछ ने कथा-संगठन में अपनी रुचि के अनुकूल उसमें काफी परिवर्तन किया। आन्ध्र देश में महाभारत और भागवत को जो लोक-प्रियता प्राप्त है, वह रामायण को नहीं। फिर भी आन्ध्र के आराध्य देव राम हैं। आन्ध्र के कोने-कोने में स्थित राम मन्दिर इसकी पुष्टि करते हैं। भक्त पोतन्ना, भक्त रामदास तथा त्यागय्या ने अपनी कृतियों द्वारा आन्ध्र देश में राम-भक्ति का अच्छा प्रचार किया। काल की दृष्टि से देखा जाए तो रंगनाथ रामायण प्रथम मानी जाती है। इसके कवि गोन बुद्धा रेड्डी ने कथा संविधान में नवीन कल्पनाओं तथा लोक प्रचलित वृत्तांतों को स्थान देकर काव्य को और भी रोचक बनाने का अच्छा प्रयत्न किया है।

तुलसी के सम्मुख लोक-संग्रह भावना का आदर्श था। उनके नायक राम सब के लिए अनुकरणीय हैं। तेलुगु में महाभारत और महाभागवत के कवियों के सम्मुख यह आदर्श था। रामायण की रचना करते समय कवियों ने केवल मात्र काव्य के आदर्शों को ही अपने सामने रखा। रंगनाथ रामायण "द्विपद" छन्द में रचा गया है। कवि काव्य-लक्षणों के निर्वाह में सजग रहे। गोन बुद्धा रेड्डी ने रामचन्द्रजी के चरित्र को आदर्शपूर्ण एवं उज्ज्वल तो बनाया साथ ही साथ रावण को भी अपार शक्ति-संपन्न, वीर, शिव भक्त तथा उत्तम चक्रवर्ति के रूप में चित्रित किया। गोन बुद्धा रेड्डी के रावण सत्व और तमोगुणों से युक्त हैं। उसमें अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। पात्र-चित्रण में कवि की सहृदयता, सहानुभूति तथा समभावना प्रशंसनीय है। रावण के सभी भाई राम के भाइयों जैसे आज्ञाकारी हैं। मंदोदरी कौसल्या जैसी पति-भक्तिन तथा सुलोचना (रावण की बहू तथा इंद्रजीत की पत्नी) सीताजी जैसी पतिव्रता थीं। इनके आदर्श सबके लिए अनुकरणीय हैं। हाँ, केवल रावण के अपराध से उस वंश पर जो कलंक का टीका लगा, बस उस के कारण सब बदनाम हुए। वैसे तो रघुकुल में भी कैकेई-जैसी स्वार्थिन ने अपने कलुष का परिचय दिया है।

रंगनाथ रामायण के रावण रामचन्द्रजी के भक्त थे। वह जानते थे कि

रामचन्द्रजी के हाथों में प्राण त्याग देने का सौभाग्य सब को प्राप्त नहीं होता है। जब युद्ध भूमि में मंदोदरी आकर रावण से प्रार्थना करती है कि युद्ध बन्द कर दें तब रावण कहते हैं—"मैं किसी भी हालत में रामचन्द्रजी को छोड़ नहीं सकता हूँ। मैं उन्हें सीताजी को नहीं दूँगा। यदि युद्धभूमि में मैं राम के बाणों के आघात से प्राण त्याग दूँ तो मुझे मुक्ति मिल जायगी। देवता मेरी प्रशंसा करेंगे। उस वैकुण्ठ के सामने सारी लंका और तुम सब बलिहारी हैं।" ऐसे ज्ञानी थे रंगनाथ रामायण के रावण। रावण का ऐसा उज्ज्वल पक्ष किसी भी रामायण में हमें उपलब्ध नहीं होता है। वाल्मीकि ने रावण को लम्पट, क्रूर एवं हठी के रूप में चित्रित किया है। तुलसी की भी समभावना नहीं थी। यद्यपि रावण सीताजी के साथ राक्षस विवाह करना चाहता था। लेकिन उन दिनों में राक्षस विवाह करने के लिए भी एक साल की अवधि नारी को दी जाती थी। इस अवधि के भीतर ही रामचन्द्र ने रावण पर विजय पाकर सीताजी को मुक्त किया।

तुलसीदास ने केवट-प्रसंग में अपनी विमल एवं धवल भक्ति का अच्छा परिचय दिया है। केवट का राम के चरण धोकर नाव पर चढ़ाना, उतराई लेने से बचना, यह मार्मिक प्रसंग पाठकों के हृदयों में गुदगुदी पैदा कर देता है। भरत मिलाप के समय भरत के हृदय की पवित्रता, कैकेई का पश्चात्ताप, अयोध्या की प्रजा की राज-भक्ति, रामचन्द्रजी की सच्चरित्रता का वर्णन पढ़ते ही बनता है। जनकपुर में धनुष-यज्ञ के पूर्व राम और सीता की मुलाकात कराकर उनमें परस्पर प्रेम की भावनाएँ पैदा कर कथा-वस्तु में औचित्य की रक्षा की है। उनके विवाह को तुलसी प्रणय-विवाह साबित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में रामचन्द्रजी अपनी शक्ति का परिचय देकर किसी कन्या से शादी कर ले, तो वह वैवाहिक-आदर्श उत्तम नहीं है। समयोचित कल्पना द्वारा अपने काव्य को तुलसी ने सजाने एवं सँवारने में कोई कसर उठा नहीं रखी। तुलसी के राम मानव रूपधारी परमात्मा थे। वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासक थे। उन्होंने रामचन्द्रजी के शील, शक्ति एवं सौन्दर्य के रूप विभिन्न घटनाओं के द्वारा पाठकों के सम्मुख रखे। इन आदर्शों के द्वारा तुलसी ने असहाय जनता को संबल देकर धर्म की रक्षा की। यही कारण है, तुलसी-रामायण आज भी जनता का कण्ठहार बना हुआ है।

गोन बुद्धा रेड्डी के रंगनाथ रामायण में द्राविड आदर्श एवं दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इन्होंने अपने काव्य में संदर्भ के अनुसार औचित्य की रक्षा करते हुए कई नये प्रसंगों को स्थान दिया है जो तुलसी और वाल्मीकि

रामायणों में भी हमें नहीं मिलते। उनमें ४-५ प्रसंगों का हम यहाँ परिचय देते हैं—

यों तो सभी रामायणकारों ने पंचवटी में शूर्पणखा का प्रवेश कराया है; किन्तु कथा औचित्य की दृष्टि से अचानक शूर्पणखा का प्रवेश कुछ विचित्र-सा लगता है। इस ओर किसी रामायणकार का ध्यान नहीं गया। गोन बुद्धा-रेड्डी ने एक अपूर्व कल्पना द्वारा पंचवटी में शूर्पणखा के प्रवेश को अत्यंत स्वाभाविक बना दिया है।

१. जंबुमाली वृत्तांत—जंबुमाली शूर्पणखा का पुत्र था। रावण ने जंबुमाली के पिता विद्युज्जिह्व का अपमान किया था। उसका बदला लेने के लिए जंबुमाली एक सघन वन में सूर्य के प्रति तपस्या कर रहा था। सूर्य भगवान ने उसकी तपस्या पर प्रसन्न हो एक सुन्दर खड्ग भेजा। लेकिन जम्बुमाली ने उसे ग्रहण करने से इसलिए इनकार किया कि स्वयं सूर्यदेव ने आकर उसे नहीं दिया। खड्ग को आकाश की ओर वापस लौटते लक्ष्मण ने देखा। लक्ष्मण उस समय कंदमूल और फल के लिए आये थे। उस खड्ग को अपने हाथ में लेकर देखा, उसकी धार पैनी थी। उसकी जाँच करने के विचार से लक्ष्मण ने पास में स्थित एक बाँस के झुरमुट पर खड्ग चलाया। उसके साथ उसमें तप करने वाला जम्बुमाली भी कट मरा। इससे लक्ष्मण भयभीत हो राम के पास गये। वहीं पास में बैठकर तप करने वाले मुनियों द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि जम्बुमाली एक राक्षस है। थोड़ी देर के बाद शूर्पणखा आयी और अपने पुत्र की मृत्यु को देख विलाप करती रही। जब उसे भी मुनियों द्वारा मालूम हुआ कि एक मुनिवेषधारी राजकुमार ने उसका संहार किया तो वह बदला लेने के लिए राम की पर्णशाला के निकट आयी। रामचन्द्रजी के अपार सौन्दर्य को देख वह अपने क्रोध को भूल गयी और उनसे विवाह करने की कामना प्रकट की।

२. सुलोचना का वृत्तान्त—रंगनाथ रामायण में सुलोचना (इन्द्रजीत की पत्नी) का चरित्र अत्युत्तम बन पड़ा है। सीता के समान पातिव्रत्य का प्रतीक सुलोचना-वृत्तान्त है। सुलोचना को विवाह के समय उनके पिता ने वरदान दिया था कि उसका पति यदि युद्धभूमि में जाते समय उससे कह करके जाये तो उसकी कभी मृत्यु नहीं होगी और चाहे विपक्षी दल के जितने भी बड़े वीर क्यों न हों, उसका वध नहीं कर सकेंगे। राम रावण के युद्ध के दिनों में एक दिन शीघ्रता में इन्द्रजीत अपनी पत्नी की अनुमति लिये बिना चला गया। उस दिन युद्ध में लक्ष्मण के हाथों से मारा गया। पतिव्रता सुलोचना अपने पति के मृत शरीर के साथ सती होना चाहती है। इसलिए अपनी सास

और ससुर से कहती है कि वे उसके पति का शरीर मँगवायें। लेकिन रावण बताते हैं कि युद्धभूमि में जाकर शत्रुओं के बीच से इन्द्रजीत का मृत शरीर लाना सम्भव नहीं है। इस पर वह अपने ससुर से आज्ञा माँगती है कि युद्धभूमि में स्वयं जाकर अपने पति के मृत शरीर को ले आने की अनुमति दे। विवश हो रावण मान लेता है। सुलोचना उड़ती हुई शत्रु के शिविर के निकट पहुँच जाती है। पहले हनुमान वगैरह सशंक हो जाते हैं, बाद को समझ लेते हैं। रामचन्द्रजी से अपने पति का शरीर माँगती है तो वे बताते हैं कि युद्धभूमि में वीरों को शरीर मिलना कठिन है। क्योंकि कहीं धड़, कहीं सर कटे गिरे होते हैं। तब हनुमान कहते हैं—तुम पतिव्रता हो, ऐसा करो कि तुम्हारे पातिव्रत्य के बल से धड़ और सर एक साथ मिल जाय। सुलोचना के प्रार्थना करने पर ऐसा ही होता है। उसके पातिव्रत्य से प्रसन्न हो राम कहते हैं, तुम चाहो तो कोई वर मांग सकती हो। इस पर हनुमान घबरा उठते हैं, क्योंकि यदि सुलोचना अपने पति को पुनर्जीवित करने का वर माँगे तो फिर इन्द्रजीत का वध करना किसी के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए हनुमान तुरन्त सरस्वती देवी से प्रार्थना करते हैं कि वह सुलोचना के जिह्वा पर बैठ कर उसके मुँह से यह वरदान निकलवाये कि वह अपने मृत पति को पुनः जीवित करने का वर न माँग बैठे। सरस्वती हनुमान की प्रार्थना को स्वीकार कर लेती हैं और सुलोचना के मुँह से कुछ दूसरा वर ही प्रकट कराती हैं। सुलोचना रामचन्द्रजी से कहती हैं—'भगवन्, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो ऐसा वर दीजिए कि दूसरे जन्म में हम दोनों फिर पति-पत्नी के रूप में जन्म धारण करें। रामचन्द्र जी ऐसा वर देते हैं। सुलोचना बड़े आनन्द से अपने पति के शवसहित सती हो जाती है।

जब उस महापतिव्रता का सम्पूर्ण समाचार जानने की जिज्ञासा लक्ष्मण प्रकट करते हैं, तब रामचन्द्र जी बताते हैं, "हे लक्ष्मण, यह सुलोचना और कोई नहीं, तुम्हारी पुत्री ही है।" लक्ष्मण में निर्वेद की भावना पैदा होती है। वह अपने जामाता की मृत्यु अपने हाथों से होने तथा अपनी पुत्री के मंगलसूत्र को आप ही तोड़ने के अपराध में खिन्न हो जीवन से विरक्त हो जाते हैं। तब रामचन्द्रजी अपने विष्णु के अवतार का रहस्य खोलकर उपदेश देते हैं—"मैं जब विष्णु के अवतार में था, उस समय तुम मेरे वाहन शेषनाग थे। उस अवतार में तुमने अपनी पुत्री सुलोचना का विवाह इंद्रजीत के साथ किया था।"

इस वृत्तांत से पता चलता है कि रामायणकार ने आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध की सृष्टि करके दोनों के प्राचीन औन्नत्य

का उत्तम परिचय दिया है। सुलोचना का चरित्र रंगनाथ रामायण में इतना अद्भुत बन पड़ा है कि उसके सामने सीताजी का चरित्र कुछ फीका-सा मालूम होता है। सुलोचना द्राविड़ नारियों की प्रतिनिधि है। यहाँ की नारियों के पातिव्रत्य, पतिपरायणता, वीरता इत्यादि का सुन्दर परिचय सुलोचना के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

३. **ऊर्मिला देवी की निद्रा**—वाल्मीकि तथा तुलसी ने ऊर्मिला के चरित्र तथा त्याग की महानता का एक प्रकार से अनादर किया। इस पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपना क्षोभ प्रकट किया है। लेकिन श्री मैथिली शरण गुप्तजी ने ऊर्मिला के महान त्याग का सुन्दर परिचय दिया है। लक्ष्मण और ऊर्मिला का आह्लादपूर्ण वैवाहिक जीवन का भी सुन्दर चित्र खींचा है और साथ ही साथ उनके विरह का भी विस्तृत परिचय उपस्थित किया है। इस प्रकार उपेक्षिता ऊर्मिला का त्यागमय जीवन साकेत में चित्रित हुआ है। ऐसा अद्भुत परिचय अन्यत्र दुर्लभ है। ऊर्मिला के प्रति गुप्तजी की सहानुभूति तथा उनके महान त्याग का आदर प्रशंसनीय है। ऊर्मिला को ही काव्य की नायिका बनाकर यह साबित किया है कि सीताजी से भी ऊर्मिला का त्याग महान है।

परन्तु गोन बुद्धा रेड्डी ने ऊर्मिला का दूसरा पक्ष उपस्थित किया है। ऊर्मिला के प्रति बुद्धा रेड्डी की सहानुभूति और आदर की भावना उनके इस वृत्तांत से प्रकट होती है। रामायणकार चाहते हैं कि ऊर्मिला उद्दाम यौवन के समय पति के वियोगानल में जलती न रहे, इसलिए एक ऐसी कथा की सृष्टि की जिससे ऊर्मिला को वियोग की वेदना का अनुभव न हो। यही कथा ऊर्मिला देवी की निद्रा है। यह यों है—

लक्ष्मण पंचवटी में अर्ध रात्रि के समय एक दिन नित्य की भाँति पहरा दे रहे थे। हठात् निद्रा देवी ने अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ उन पर हमला किया। वीरवर लक्ष्मण यदि सो जाते तो वे अपने कर्त्तव्य-पथ से गिर जाते, इसलिए उन्होंने निद्रादेवी से सविनय प्रार्थना की—"हे माता, मुझे तो अपने भाई-भाभी की सेवा करना है। मेरे वियोग में ऊर्मिला बड़े कष्ट से अयोध्या में अपने दिन बिता रही है। आप कृपया उन पर अपनी कृपा दृष्टि प्रसारित करें, ताकि वह १४ वर्षों तक मेरे वियोग की व्यथा का अनुभव न करे।" लक्ष्मण की प्रार्थना निद्रा देवी ने मान ली। जब १४ वर्ष के बाद लक्ष्मण अयोध्या लौटते हैं तो रामचन्द्रजी उनसे कहते हैं कि वह तत्काल ही ऊर्मिला के कुशल होने का पता लगावे। भाई की आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी अंतःपुर में

पहुँच जाते हैं। किन्तु देखते क्या हैं कि ऊर्मिला गाढ़ निद्रा में निमग्न है। लक्ष्मण ऐसी ध्वनि करते हैं कि ऊर्मिला जाग पड़ती है। अपने महल में आये हुए व्यक्ति को परपुरुष मानकर वह धमकाती है कि यह समाचार उसके पति लक्ष्मण तथा उनके भाई रामचन्द्रजी को मालूम हो जाएगा तो जान की खैर नहीं। इसके उपरांत वह रघुवंश की बड़ाई करती है। लक्ष्मण अनेक उदाहरणों द्वारा यह साबित करते हैं कि वे ही लक्ष्मण हैं और वनवास समाप्त कर अयोध्या लौटे हैं। सारी कहानी को सुनकर ऊर्मिला लक्ष्मण के चरण छू लेती है।

देवर लक्ष्मण की हँसी—इस वृत्तांत में गोन बुद्धा रेड्डी ने लक्ष्मण के त्यागमय जीवन पर प्रकाश डाला है। वनवास करने का आदेश केवल रामचन्द्रजी को ही मिला था, फिर भी लक्ष्मण भाई और भाभी की सेवा के लिए उनके साथ चल पड़ते हैं प्राण प्यारी पत्नी को भी छोड़कर; वह भी अपनी इच्छा से। ऐसे महान त्यागी पुरुष के पवित्र चरित्र पर प्रकाश न डालें तो उनके प्रति अन्याय ही होगा। कथा-सार यों है—

अयोध्या में रामचन्द्रजी का दरबार लगा हुआ था। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान इत्यादि उस सभा में उपस्थित थे। सीताजी रामचन्द्रजी के अंक पर शोभायमान थीं। अचानक लक्ष्मण हँस पड़े। सीताजी ने सोचा कि भरी सभा में रामचन्द्रजी की गोद में बैठे देख लक्ष्मण हँस रहे हैं। तुरन्त उनका कमल-जैसा मुख-मण्डल म्लान हो उठा। विभीषण और सुग्रीव ने सोचा कि दोनों ने अपने भाइयों के प्रति अन्याय किया है। इसकी याद करके लक्ष्मण हँस रहे हैं। हनुमान ने सोचा कि उनके जैसे बड़े वीर को रामचन्द्रजी के चरणों के पास बैठे देख लक्ष्मण हँस रहे हैं। इसी प्रकार सभी उपस्थित सदस्यों के चेहरे विवर्ण हो गये। रामचन्द्रजी ने सारी सभा के म्लान हो जाने का कारण लक्ष्मण ही को मान बिना कुछ सोचे-विचारे लक्ष्मण का वध करने का आदेश दिया। इस पर वशिष्ठ, विश्वामित्र इत्यादि मुनियों ने रामचन्द्रजी से निवेदन किया कि बिना हँसी का कारण जाने वध करने की आज्ञा देना उचित नहीं। इस पर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कारण पूछा तो उन्होंने निद्रादेवी की सारी कथा सुनायी और कहा—आज पूरे १४ साल हो गये हैं। निद्रादेवी से मैंने पंचवटी में प्रार्थना की थी; आज उस अवधि के समाप्त होते ही उसने मेरे ऊपर ही हमला बोल दिया है। रामचन्द्र जी को वनवास की सारी कहानी याद आयी। लक्ष्मण ने निद्रा और आहार त्याग कर उनकी सेवा की थी। ऐसे भ्राता को तुरन्त वध करने का आदेश दिया, रामचन्द्र ने अपने इस अपराध पर पश्चात्ताप किया। मुनियों ने प्रायश्चित्त का विधान लक्ष्मण के

चरण छूने का बताया। लक्ष्मण के सोते समय रामचन्द्र जी ने अपनी भूल का प्रायश्चित्त किया। इस रामायण के कई प्रसंगों को आज भी लोक-कथाओं के रूप में पुतली खेल, बुर्रकथा, हरिकथा, इत्यादि के प्रदर्शन के समय जनपदों में व्यवहार में ला रहे हैं। साधारण प्रजा में इस रामायण को जो लोकप्रियता प्राप्त है वह अन्य रामायणों को नहीं।

इस रामायण का प्रत्येक पात्र बाल्मीकि तथा तुलसी रामायण से भिन्न उत्तम आदर्शों को लेकर प्रस्तुत हुआ है। विस्तार के भय से हम उन सब का वर्णन नहीं कर रहे हैं। यों तो संख्या की दृष्टि से तेलुगु में ३०-३२ रामायण रचे गये हैं। हम यहाँ केवल ३-४ रामायणों की चर्चा मात्र करेंगे।

रंगनाथ रामायण के उपरान्त भास्कर रामायण का नम्बर आता है। भास्कर रामायण की रचना ४-५ कवियों ने की है। इसमें राम का आदर्श अत्यन्त उत्तम बन पड़ा है। श्री रामचन्द्र जी ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राज्य त्याग दिया। राम-रावण के युद्ध के समय विभीषण रामचन्द्र जी की शरण में आये, उस समय रामचन्द्र जी विभीषण से कहते हैं—"हे विभीषण, तुम्हारी भक्ति और श्रद्धा पर मुग्ध हूँ। रावण का संहार कर तुम्हें लंकापुरी राज्य का राजा बनायेंगे। अपने हाथों से तुम्हारा पट्टाभिषेक करूँगा।"

इस पर सुग्रीव शंका प्रकट करते हैं—"प्रभू ! रावण अपनी भूल पर पश्चात्ताप करके जगज्जननी जानकी देवी को आपको समर्पित कर आपकी शरण में आवे तो क्या करेंगे?" उस हालत में लंका का राज्य रावण का ही होगा न ! विभीषण को कौन-सा राज्य देकर आप अपने वचन का पालन करेंगे?"

रामचन्द्र जी सुग्रीव के ये वचन सुनकर बड़ी उदारता से कहते हैं— "तब तो मैं अपना अयोध्या का राज्य उन्हें दे दूँगा।" ये वाक्य रामचन्द्र के मुँह से ही प्रकट होते हैं :

> "अनघ चरित्र मीकु शरणागतरक्ष कुलव्रतंबु, मी
> सुनिश्चित बाण जालमुल चोकुन कोर्वकवच्चितादशा
> ननडुभवंबु वेडिकोनि नंदगवेट्लगुनन्न नव्विभु
> डिनुसुतुजूचि यट्लयिन निच्चेदवानिकयोध्य यंचनन्"
>
> —भास्कर रामायण

भास्कर रामायण में सीता-राम का अद्वैत प्रेम, भूतदया अत्यद्भुत एवं

अवर्णनीय है। रामचन्द्र जी का प्रेम-प्रकृति और पुरुष का हमें स्मरण दिलाता है। वे सीता जी से कहते हैं—"तुम मेरे जीवन हो, मेरे द्वितीय हृदय हो, मेरे नेत्रों की ज्योत्स्ना हो और मेरी देह के लिए अमृततुल्य हो।"

राम और भरत का मिलाप तुलसी रामायण में जैसा मनोहर बन पड़ा है, भास्कर रामायण में भी उतना ही सुन्दर चित्रित हुआ है। चित्रकूट में प्रवेश कर भरत मुनि वेषधारी रामचन्द्र जी को देख विलाप कर उठते हैं। सारांश यों है—

"महनीय मणिमय मन्दिरों में निवास करने वाले श्री रामचन्द्र जी आज पर्णशाला में हैं। मखमल की गद्दियों पर विश्राम करने वाले राम आज दर्भ-शय्या पर आराम कर रहे हैं। मूल्यवान मालाओं तथा पीताम्बर धारण करने वाले राम आज जटाधारी हो वल्कल पहन रहे हैं। जिस सम्राट की सेवा में समस्त राज परिवार (समस्त राज्यों के राजा) उपस्थित रहता था, वही सम्राट आज मुनियों की सेवा में हैं। कैकेई के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही मुझे आज यह दुरवस्था देखनी पड़ी।" इस प्रसंग को पढ़ते ही पाठकों का हृदय विदीर्ण हो जाता है।

भास्कर रामायण में छः काण्डों का ही वर्णन है। उत्तरकाण्ड की रचना कंकंटि पापराजु ने की है। श्री पापराजु ने उत्तरकाण्ड के वृत्तान्तों को आधार बनाकर अपनी रुचि के अनुरूप कथा-विस्तार करके उसे एक महाकाव्य का रूप दिया है। पापरागु के पूर्व कवि ब्रह्मनाम से विख्यात महाकवि तिक्कना ने भी निर्वचनोत्तर रामायण प्रस्तुत किया था। तिक्कना का निर्वचनोत्तर रामायण संक्षिप्त मात्र बन पड़ा है। इन दोनों काव्यों में जानकी का शोक वृत्तान्त भिन्न रूप में वर्णित है। तिक्कना के उत्तर रामायण की कथा यों है—"लीला-विहार के समय एक दिन श्री रामचन्द्र ने गर्भवती सीताजी से पूछा कि वह अपनी कोई इच्छा हो तो बतावे।" सीताजी तो पहले लजा गयीं। तदुपरान्त रामचन्द्र से कहा—"मुझे गंगा नदी के किनारे रहने की इच्छा हो रही है।" रामचन्द्र ने मान लिया। दूसरे दिन जब रामचन्द्र दरबार में पहुँचे तो उनके नर्म-सचिव (निजी सचिव) भद्र द्वारा यह जानकर कि लोग सीताजी को रावण के यहाँ से लाने के कारण तरह-तरह की बातें करते हैं, सीताजी को वन भेजने का निश्चय करते हैं। तुरन्त अपने भाइयों को बुलाकर मंत्रणा करते हैं और यह वृत्तान्त सुनाकर अपना निर्णय भी बता देते हैं। भातृप्रेमी रामचन्द्र जी के अनुज मौन धारण करते हैं।

दूसरे दिन सुमन्त्र रथ तैयार कर लक्ष्मण के सामने उपस्थित करते हैं।

रामचन्द्र सीताजी से कहते हैं—"तुम्हारे गंगा तट पर विहार करने का उचित प्रबन्ध किया है। लक्ष्मण तुम्हारे साथ चलने वाले हैं। ये वचन कहकर सीताजी को रथ पर चढ़ाते हैं। जानकी भी अत्यन्त आनन्द के साथ रथ पर आरोहण करती हैं। रामचन्द्र जी कानन में मुनि-पत्नियों को देने के वास्ते अमूल्य आभूषण एवं वस्त्र देकर विदा करते हैं।

सीता जी को मार्ग-मध्य में अनेक अपशकुन देख दुःख होता है। गंगातीर पर पहुँच कर लक्ष्मण रथ रुकवा देते हैं। गंगा पार करके एक भयंकर कानन के निकट पहुँचने के बाद लक्ष्मण विषाद हृदय से रामचन्द्र जी की आज्ञा सुना देते हैं, अपने आपकी निन्दा करते तथा विधि की विडम्बना पर खेद प्रकट करते हुए। जानकी काँपते हुए लक्ष्मण को देख चकित हो शंकाकुल हो जाती हैं। इसके बाद लक्ष्मण अपने हृदय को पत्थर बनाकर राम का आदेश सुनाकर बता देते हैं—"पास में ही मुनियों का आश्रम है, चिन्तारहित हो वहीं रहें।" सीताजी अपने दुर्भाग्य पर शोक प्रकट करती हैं। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख होता है कि रामचन्द्र जी ने उनसे सच्ची हालत क्यों नहीं बतायी। जैसे गौतम भी यशोधरा से बिना कुछ कहे चल पड़े तो यशोधरा को दुःख हुआ था। इधर जानकी सोचती ही रहती हैं कि लोगों के अपवाद को कैसे दूर किया जाय। लक्ष्मण जानकी जी के चरणों पर गिर पड़ते हैं। षाष्टांग दण्डवत करके नगर की ओर भारी हृदय लेकर चल पड़ते हैं। यह प्रसंग हमें तुलसी रामायण में दिखाई नहीं देता। कंकंटि पापराजु ने अपने उत्तर रामायण में उक्त प्रसंग को दूसरे ढंग से उपस्थित किया है। कथा-वृत्तान्त इस प्रकार है—रामचन्द्र जी अपने भाइयों को बुलाकर सीता जी पर लोकापवाद का समाचार सुनाते हैं, और कहते हैं—"महादेव, ब्रह्मा, मुनि तथा देवगणों की प्रशंसा प्राप्त करने वाली सती को मुझे अग्निदेव ने प्रदान किया है। ऐसी सती पर कलंक का टीका लगा है।" यों विलाप करके अन्त में सीताजी को वनवास भेजने का निर्णय करते हैं। लेकिन इस प्रसंग में तिक्कना के भाव को पापराजु ने इस प्रकार परिवर्तित किया है—सीताजी के पास दूसरे दिन सुबह स्वयं लक्ष्मण पहुँच जाते हैं और कहते हैं—"हे माता! गंगा तीर पर विहार करने के लिए रामचन्द्र जी ने मुझे भेजा है। रथ भी ले आया हूँ, तैयार हो जाइए।" ये वचन सुनकर प्रसन्न चित्त हो सीताजी स्वयं आभूषण एवं वस्त्र लेकर रथ पर सवार हो जाती हैं।

सीताजी के जाते समय मार्ग-मध्य में लोमड़ी, चील, उल्लू इत्यादि का रास्ते में दिखाई देना, रथ की ध्वजा पर चीलों का आक्रमण इत्यादि अपशकुन देख सीताजी का हृदय व्याकुल हो उठता है। कानन में पहुँचने के उपरांत

लक्ष्मण रामाज्ञा को सुनाते रो पड़ते हैं। इस संदर्भ में लक्ष्मण की सुशीलता का सुन्दर परिचय मिलता है—लक्ष्मण विलाप करते कहते हैं—"हे माता, आखिर मैं किसी कठिन विधि की बात सुनाने जा रहा हूँ। मुझ जैसे मूर्ख की सृष्टि विधि ने किस प्रकार की ? रामचन्द्रजी ने यह सोचकर मुझे इस कार्य के लिए नियत किया है कि यह कठिन चित्त वाला कोई भी कार्य कर सकता है। मैं ऐसा पापी हूँ कि तुम्हें अपने पतिदेव से अलग कर अकेले इस भंयकर कानन में छोड़ कर चला जा रहा हूँ।" सीता और लक्ष्मण के वचन करुणा रस में भीगे हुए हैं और पाठक पढ़ते-पढ़ते बरबस रो उठते हैं।

लोकापवाद का समाचार सुन सीता मूर्च्छित हो जाती है, फिर होश में आने पर कहती है—"मैंने शायद अपने पूर्व-जन्म में किसी दंपत्ति को अलग किया था; उसी का फल अब भोगने जा रही हूँ।" फिर कभी कहती हैं कि "सभी मुझे सती, साध्वी और पतिव्रता कहने से संतोष करने वाले रामचन्द्रजी आज मेरे ऊपर दोषारोपण करके वनवास का कठिन कष्ट देने वाले हैं, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी।" फिर कभी कहती है—"हे लक्ष्मण, तुमने रामचन्द्रजी की आज्ञा ठीक तरह से सुनी नहीं होगी, या मतिभ्रम होने के कारण कह रहे हो। रामचन्द्रजी तो स्वप्न में भी ऐसा आदेश नहीं दे सकते हैं।" फिर थोड़ी देर बाद दु:खातिरेक में कह उठती हैं—"लक्ष्मण, मैंने भूल से ये कठिन वचन कहे, सहन करो।" आखिर जीवन से विरक्त हो बता देती है—"मेरा शरीर है और है सामने भागीरथी ! फिर क्या ? मैं अपनी इहलीला यहीं समाप्त कर सकती हूँ।"

फिर विलाप करती हैं—"मुनि-पत्नियों के पूछने पर मैं क्या उत्तर दूँगी ? राम की निन्दा होते कैसे सहन करूँगी। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मानकर कानन-वास करूँगी।" इस प्रकार जानकीजी की मन:स्थिति का वर्णन पढ़ते ही बनता है। लक्ष्मण से सीताजी को बिदा लेते देख पाठकों के नेत्र सजल हो उठते हैं।

मोल्ला (मोल्लांबा) नामक एक कवयित्री ने भी तेलुगु में रामायण की रचना की है, जो मोल्ल रामायण नाम से विख्यात है। कुम्भकार वंश में जन्म लेकर उत्तम कवितावेश के साथ संग्रह रामायण सरल भाषा में कवयित्री ने प्रस्तुत की है। सारा रामायण भक्ति-भावना से ओतप्रोत है। यह रामायण साधारण प्रजा, स्त्री तथा बालक-बालिकाओं के उपयोगार्थ रची गयी है। कवयित्री ने रामायण की रचना का उद्देश्य यह बताया है कि जिस प्रकार मधु खाने से मुँह मीठा हो जाता है, उसी भाँति काव्य-पठन से काव्य के रस

का आनन्द पाठक उठा सके, यही काव्य का प्रयोजन है। अन्यथा गूढ़ शब्दों में काव्य रचा जाय तो वह मूक और बहरे लोगों का विलाप ही होगा।

रावण द्वारा सीता का अपहरण होने पर सीता-विलाप का प्रसंग हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। रावण का सीताजी के समक्ष अपनी बड़ाई का वर्णन, सीता-राम का प्रेम-वृत्तांत इत्यादि प्रसंग वाल्मीकि तथा तुलसी रामायणों से अधिक स्वाभाविक एवं उत्तम बन पड़े हैं। धनुष यज्ञ के प्रसंग में तो श्रीरामचन्द्र जी लीलामानुष के रूप में चित्रित हैं। राजकुमार सीताजी के स्वयंवर में भाग लेने आये हैं। शिव-धनुष को देख सभी चकित हो जाते हैं। उस प्रसंग का वर्णन कवयित्री के शब्दों में सुनिए—

"यह धनुष तो पर्वताकार है। इसकी ओर देवता भी अपनी आँख उठाकर देखने का साहस नहीं कर सकते हैं। यह तो शिवजी का धनुष है, इसे या तो हरि तोड़ सकता है या हर, अन्य लोगों के लिए कैसे संभव होगा? ऐसे महान धनुष को उठाने का दम्भ भरना, उसके पास पहुँचना और अपयश प्राप्त करना तो मूर्खता है। अपनी शक्ति और बाहुबल का ज्ञान रखते हुए भी उसे तोड़ने का प्रयत्न क्यों करें? शिवधनुष तोड़कर सीता जी को प्राप्त करने का सौभाग्य किसी देवता के लिए ही संभव है। अर्थात् सीताजी तो उन्हीं की संपत्ति हैं। दूसरों की संपत्ति को पाने की लालसा उचित नहीं। यह सोचते वहाँ पर उपस्थित सभी राजकुमार धनुष यज्ञ के मण्डप से बाहर आ गये।"

सरल भाषा में रचित मोल्ल रामायण जनपदों में काफी आदर प्राप्त है। इसका पठन-पाठन भी रंगनाथ रामायण की तरह आन्ध्र के जनपदों में आज भी होता आ रहा है।

इसके उपरांत रघुनाथ राय ने रघुनाथ रामायण, गोपीनाथ ने गोपीनाथ रामायण इत्यादि अनेक व्यक्तियों ने रामायण की तेलुगु में गद्य व पद्य में रचना की। आधुनिक युग में श्री वाविलिकोलनु सुब्बाराव, श्री जनमंचि शेषाद्रि शर्मा, श्री श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री (आस्थान कवि) तथा कवि सम्राट श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी ने रामायण लिखे। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण कृत "रामायण कल्पवृक्ष" अपने ढंग का अपूर्व तथा अद्भुत है। ये राम के अनन्य भक्त तथा महाकवि हैं। रामायण की केवल कथा मात्र को ग्रहण कर अपनी स्वतंत्र प्रतिभा के द्वारा आपने एक उत्तम कला-सौध का निर्माण किया है। पांडित्य तथा शिल्प की दृष्टि से इसकी समता कर सकने वाला रामायण दुर्लभ है। यह आन्ध्र देश तथा तेलुगु के लिए बड़े गौरव एवं गर्व की बात है। कवि रामायण की रचना का उद्देश्य इस प्रकार बताते हैं—"लोग

मुझसे पूछ सकते हैं कि तेलुगु में इतने रामायणों के होते हुए फिर रामायण की ही रचना आप क्यों कर रहे हैं ? परन्तु यह जगत भी तो प्रतिदिन एक ही तरह खाना खाता है, लेकिन स्मरण रखने की बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की अभिरुचि, जीवन शैली, अनुभूति, भक्ति इत्यादि भिन्न होती है । कवि की प्रतिभा में काव्यगत रस का निरूपण नित्य नूतन हो बहिर्गत होता है । इसे प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान स्वीकार करते हैं । मेरी कविता की भी यही विशेषता है ।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के द्वारा रामायण कल्पवृक्ष को एक महान साहिती कल्पवृक्ष का रूप देने में संलग्न हैं । कवि में पारमार्थिक दृष्टि अधिक है । उनका कहना है कि "जागृति तथा स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं में उनकी जिह्वा पर रामनाम नृत्य करता रहता है ।" इसलिए कवि उस कृति को भगवान को ही समर्पित कर चुके हैं । वे कहते हैं—"हे देवादिदेव ! पाठक मेरे इस काव्य को पढ़ें या न पढ़े, अर्थात् इसका आदर करें या न करें, इससे मुझे कोई मतलब नहीं । मैं अपना हृदय उन लोगों के सामने रख रहा हूँ, इसका फल मुझे प्राप्त हो ।"

महाकवि की कविता प्रौढ़, सरस, मधुर तथा पांडित्यपूर्ण है । कैकेयी के चित्रण में कवि ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया है । उनके प्रति कवि के हृदय में जो अगाध सहानुभूति का स्रोत है, उमड़ पड़ा है । कैकेयी तो मानवी है । मानवीय दुर्बलता तो स्वाभाविक है । उसने तो अपने हक की माँग की है । वैसे तो वह रामचन्द्रजी को कितना चाहती है । संतानप्रियता पाप नहीं है । विवाह के समय में ही दशरथ ने वचन दिया था कि उनकी संतति को ही राजगद्दी मिलेगी । भला फिर दशरथ समय पर मुँह क्यों मोड़ते हैं । राजा शांतनु के लिए भीष्म ने अपना राजपाट त्याग नहीं किया था ?

प्रारम्भ में संतान के न होने पर दशरथ का दुखी हो महामात्य के सामने जो दुःख प्रकट करते हैं, वह प्रसंग पाठकों के हृदय को द्रवीभूत कर देता है । ऐसे असंख्य मार्मिक प्रसंगों से पूर्ण रामायण कल्पवृक्ष के कुछ ही कांड प्रकाशित हो सके हैं । दो-तीन काण्ड अभी शेष हैं । उनके प्रकाशन से तेलुगु साहित्य जगमगा उठेगा ।

आन्ध्र देश में रामचरित सम्बन्धी इन काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त शतक, कीर्तन, गीत विपुलसंख्या में रचे गये हैं । उनमें भक्त रामदास कृत, दाशरथी शतक तथा भक्त शिरोमणि श्री त्यागराज कृत कीर्तन आज भी जनता के कंठहार बने हुए हैं । लोग भक्ति के पारवश्य में मुग्ध हो वे कीर्तन गाते-झूमते

दिखाई देते हैं। इनके अलावा कथाएँ असंख्य परिमाण में रची गयी हैं। उनमें लक्ष्मण-मूर्च्छा, शतकंठ रामायण, कुश-लव कथा, पाताल होमम् इत्यादि प्रसिद्ध हैं। ये सब राम को अवतार पुरुष मानकर रची गयी हैं। इनमें अलौकिक घटनाओं का समावेश अधिक हुआ है। यहाँ पर केवल शतकंठ रामायण का सारांश मात्र देंगे। "दशकंठ (रामायण) की मृत्यु के उपरांत शतकंठ नामक एक राक्षस ने राम से बदला लेने के विचार से ब्रह्मा के प्रति घोर तपस्या की और ब्रह्मा से वर प्राप्त कर मुनियों को तंग करने लगा। मुनियों ने राम की शरण ली। राम और शतकंठ के बीच घोर युद्ध हुआ। रामचन्द्रजी की ओर से उनके भाइयों ने ही नहीं अपितु उनकी पत्नी सीताजी ने भी युद्ध किया। युद्ध हो ही रहा था कि शतकंठ के रक्त से शतमुख पैदा हुआ; अंत में रामचन्द्र आदि ने सब का संहार किया।

इस प्रकार रामचरित पर असंख्य कवियों ने विभिन्न रूपों में रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राम चरित का ऐसा विपुल प्रचार क्यों हुआ? कवि मुरारी के शब्दों में मैं अपनी रचना समाप्त करता हूँ। "अनर्घराघवम्" में मुरारी लिखते हैं—"रामचरित पर अनेकों ने कलम चलायी है। यह सोचकर चुप रहें तो ऐसे महान गुणों से पूर्ण नायक और कौन है, जिसके गुण विशेषों का वर्णन कर कवि अपनी वाणी को सार्थक बना सकते हैं।"

१२

तेलुगु में कृष्ण काव्य

गर्ग संहिता में विष्णु के अवतार का परिचय देते हुए कहा गया है कि अवतार प्रधानतः पाँच प्रकार के हैं। जो क्रमशः अंशावतार, अंशाशावतार, आवेश अवतार, कलावतार और परिपूर्णावतार। किन्तु उनमें से कृष्णावतार को ही परिपूर्णावतार बताया गया है।

अन्य अवतार परिपूर्ण होते हुए भी सर्वव्यापी नहीं हैं। एक ही समय में समस्त लोकों में समस्त रूपों में दर्शन देना ही उसकी अनुपमता का निदर्शन कहा जा सकता है। अपने मुखमण्डल में यशोदा देवी को समस्त ब्रह्माण्डों का दर्शन कराना, गोवत्स तथा गोप-बालकों को ब्रह्ममय बना देना कृष्ण का स्वयं उन रूपों में प्रस्तुत होना, गोपिकाओं को अनेक रूपों में एक साथ एक ही समय में दिखाई देना, रासक्रीड़ा करते हुए उसी समय नारद मुनि को सोलह हजार एक सौ आठ अपनी प्रियाओं के महलों में दर्शन देना, अपने आजन्म शत्रु कंस को प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में दिखाई देना, द्वारका नगरी में रहते हुए कौरव सभा में द्रौपदी का चीर-हरण होते देख उनकी मान-रक्षा करना, धृतराष्ट्र तथा अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन देना, नारद ऋषि को गोलोक में राधा-समेत दर्शन देना इत्यादि असंख्य अमानवीय घटनाओं के आधार पर हमें विदित होता है कि श्रीकृष्ण परमात्मा प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में स्वयं प्रकाशमान हैं; अतः उनका कृष्णावतार अन्य अवतारों की अपेक्षा अधिक परिपूर्ण है।

कृष्णावतार तत्व का परम रहस्य यह है कि कृष्ण अहंकार एवं ममता, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे विशुद्ध चैतन्य स्वरूप थे। यही कारण है कि आपने मामा, फुफेरा भाई, भानजा यहाँ तक कि अपने पुत्रों को मरते देखकर भी विचलित हुए बिना विश्वरूपी रंगमंच पर जगन्नाटक सूत्रधारी हो अपने पात्रों

का रसानुकूल अभिनय करते—प्रेक्षकों की अनुभूतियों से तटस्थ रह कर समस्त प्रकार के मनोविकारों से निर्लिप्त हो, आद्यन्त एक आलोकमय दीपक की भाँति आनन्दमय हो, साक्षी मात्र रहे, इसी से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं।

कृष्णोपनिषद में श्रीकृष्ण के अवतार का रहस्य बताया गया है। रामावतार में सर्वांग सुन्दर रामचन्द्रजी के असाधारण सौन्दर्य के दर्शन कर वनवासी मुनि मोहित हुए। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्री महाविष्णु ने कृष्णावतार लिया। सब मुनि गोपिकाएँ हुए। मुक्तिकांता यशोदा है, परमानंद नंद है, सत्य अक्रूर हैं, दम उद्धव, काली कंस, द्वेष चाणूर, मत्सर मुष्टिक तथा दर्प कुवलय पीड़ हुए।

कृष्ण ने सर्वज्ञ की भाँति व्यवहार किया है। शोक-मोह, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान इत्यादि द्वन्द्वों से अतीत रहकर सिद्धावस्था को प्राप्त महायोगी-जैसे जीवन-रंगमंच पर अभिनय किया है। इस प्रकार अपनी दिव्यता का परिचय ही नहीं दिया अपितु भगवद्गीता-जैसे ज्ञान-भण्डार को अर्जुन के माध्यम से जगत को प्रदान किया। समस्त उपनिषदों का सार भगवद्गीता है। गीता के स्थितप्रज्ञ सम्बन्धी सभी लक्षण, गुणातीत स्थिति, सिद्धावस्था को प्राप्त योगीश्वर के लक्षण, कर्म, ज्ञान आदि के विधानों को हम कृष्ण में देख सकते हैं; इसलिए कृष्ण चरित सर्वाधिक महिमासम्पन्न है।

कृष्ण चरित तेलुगु वाङ्मय में प्रधानतः तीन रूपों में उपलब्ध होता है : १. काव्य, २. यक्षगान और ३. लोकगीत। इनके अलावा गद्य की विविध विधाओं में भी कृष्ण चरित विभिन्न रूपों में वर्णित है।

उपलब्ध साहित्य में तेलुगु का प्रथम काव्य नन्नयभट्ट द्वारा विरचित 'महाभारत' है। आदि कवि नन्नय ने 'महाभारत' को कृष्णद्वैपायन के उद्यान में प्रादुर्भूत पारिजात की संज्ञा दी है—

"असंख्य कथारूपी शाखाओं से शोभित वेदार्थरूपी निर्मल छाया से पूर्ण, पुरुषार्थरूपी पुष्प-समूह से शोभायमान, कृष्ण और अर्जुन-जैसे उत्तम पुरुषों के गुणों की प्रस्तुति करने वाले फलों से पूर्ण, व्यासरूपी उद्यान में प्रादुर्भूत महाभारतरूपी पारिजात वृक्ष ब्राह्मणों के लिए वांछित है।"

भारतीय वाङ्मय पुरुषार्थपरक है। इस कर्मभूमि में पुरुषार्थविहीन कार्य की कोई महत्ता नहीं है। साधारण कथा से लेकर वेद और उपनिषदों तक का समस्त साहित्य पुरुषार्थ को प्रबोधित कर रहा है।

पुरुषार्थ का प्रतिपादन महाभारत का प्रधान उद्देश्य है। महाभारत का पठन, श्रवण तथा उसके आचरण यज्ञ-सदृश्य हैं। महाभारत के अन्तर्गत भगवद्गीता स्वयं इस बात की घोषणा कर रही है कि समस्त यज्ञों में ज्ञान-यज्ञ ही श्रेष्ठ है। महाभारत के नायक लोकोत्तर प्रतिभासम्पन्न हैं। उनमें भी कृष्ण और अर्जुन असदृश्य हैं। इसलिए कहा गया है—

"नारायण पांडवेय गुण महात्मयामल ज्योतसना"

अर्थात् कृष्ण और पाण्डवों के गुणों का माहात्म्य निर्मल ज्योत्सना है।

महाभारत भारतीय वाङ्मय में पंचम वेद माना जाता है और इसके सूत्रधार भगवान कृष्ण हैं। उनकी लीलाएँ इस महाकाव्य में यत्र-तत्र अभिवर्णित हैं। नन्नयभट्ट ने विष्णु रूप कृष्ण को सृष्टि, स्थिति एवं लय का कारणभूत बताते हुए उनकी महिमा का गान किया है।

"हे कृष्ण, तुम पूज्य हो, पुराण पुरुष हो, ईश्वर हो, अप्रमेय हो और चर तथा अचर (चेतन और जड़) तुम्हारे ही भीतर जन्म धारण करते हैं, बढ़ते हैं और लय हो जाते हैं।" (वनपर्व अ० ७, प० १२६)

सभा पर्व में द्रौपदी के चीर-हरण-प्रसंग में नन्नय ने कृष्ण को जगत्वन्द्य सिद्ध किया है। करुणा-रस से ओतप्रोत यह घटना अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी है। द्रौपदी के पातिव्रत्य के तेज की महिमा विस्पष्ट रूप में प्रतिपादित हुई है।

नन्नय भट्ट ने तेलुगु महाभारत के आदिपर्व एवं सभापर्वों की रचना और वनपर्व की रचना करते समय उनका निधन हो गया। वनपर्व का शेषांश एर्राप्रगेड़ा ने पूरा किया तो शेष १५ पर्वों की रचना महाकवि तिकन्ना ने की है। तिकन्ना महाकवि ही नहीं अपितु महामन्त्री भी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी राजनीति की कुशलता का परिचय प्रसंगवश सर्वत्र दिया है। मुख्यतः कृष्ण जब दूत बनकर कौरव की सभा में जाते हैं, वहाँ जो दूत-कार्य सम्पन्न है, उनका वाक्चातुर्य तिकन्ना की मेधा का परिचय कराता है।

महाकवि तिकन्ना ने कृष्ण को केवल राक्षसों के संहारक के रूप में ही चित्रित न कर उन्हें सारथी, सलाहकार, सखा, राजदूत, हितैषी, विश्वव्यापी, परमात्मा इत्यादि विविध रूपों में चित्रित किया है।

कृष्ण ने कंस, बक, बकासुर, नरकासुर, मुरासुर, शिशुपाल, चाणूर, शकटासुर इत्यादि का वध करके अपने अवतार का कार्य सम्पन्न किया और धर्म की स्थापना की। इन घटनाओं का मनोहर चित्र तेलुगु वाङ्मय में पाया जाता है। लेकिन इनमें भी अधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग जो तेलुगु में वर्णित है और

जिनके चित्रण में तिकन्ना ने अपनी प्रतिभा का खुलकर परिचय दिया है, वे काव्य गरिमा से ओतप्रोत हैं ।

पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो गया है । वासुदेव पांडवों को देखने की अभिलाषा से उपप्लाव्यपुर में पधार रहे हैं । बलराम सात्यकी समेत सुभद्रा और अभिमन्यु को भी साथ लिये उचित रथों पर आरूढ़ हो प्रयाण कर रहे हैं । उनके साथ कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्बु, खमक, युयुध, अक्रूर, पांडवों के साथी भी चल रहे हैं । इस घटना का वर्णन पाठकों को पुलकित किये देता है ।

उत्तरा और अभिमन्यु के विवाहानंतर युधिष्ठिर तथा अन्य पांडव, राजा विराट, राजा पांचाल, श्रीकृष्ण, बलराम इत्यादि राजा विराट के दरबार में उचित आसनों पर विराजमान हैं । उस समय पांडवों ने अनेक प्रकार से सोच-विचार कर कौरवों के साथ समझौता करने के लिए कृष्ण भगवान से निवेदन किया । युधिष्ठिर ने यहाँ तक कहा कि यदि कौरव आधा राज्य देने के लिए तैयार न हों तो कम से कम पाँच गाँव पर्याप्त हैं । भीम ने इसका विरोध किया । परन्तु द्रौपदी सन्धि करने के लिए तैयार ही न थीं । कृष्ण भगवान भी अपनी बहन सुभद्रा से बढ़कर दौपदी से अधिक प्रेम करते थे और उसका आदर करते थे । महाकवि तिकन्ना ने द्रौपदी के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल बना दिया है—द्रौपदी का जन्म वरदान से हुआ था । भरत वंश में उसका विवाह हुआ । पांडुराज की बहू बनी । जनवेद्य पतियों को पाया । नीतिविक्रम पुत्रों को जन्म दिया । परन्तु इतना कुछ होते हुए भी उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ा । उत्तम क्षत्रिय-वंश में जन्म धारण करके महा-पराक्रमशाली पतियों के होते हुए भी पग-पग पर द्रौपदी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । फिर भी वह अपने उत्तम गृहणी धर्म से विचलित नहीं हुई । एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में लोक विख्यात हुई है । युधिष्ठिर को भी कठिन अवसरों पर सलाह देकर चकित करने वाली है । जरूरत पड़ने पर उन्हें डाँटने में भी भय नहीं खाती । भीमसेन-जैसे बाहुपराक्रमी को भी अपने संकेत पर चला लेने की क्षमता रखती है । अनेक विषयों में समान संस्कारों के होने के कारण वह स्वभावतः अर्जुन के प्रति पक्षपातिनी है ।

द्रौपदी कौरवों से प्रतिकार की कामना करती थी । उनसे संधि करना कदापि उन्हें पसन्द नहीं था । दूतकार्य पर जाने वाले कृष्ण को सम्बोधित करके द्रौपदी ने जो वाक्य कहे वे पाठकों के कानों में सदा गूँजते रह जायेंगे। द्रौपदी के मन में इस बात का डर था कि कहीं गोविन्द सन्धि न कर दें । इस भय से अपने श्यामल केशों को फैलाकर हृदय से उमड़ने वाले रोष एवं

विषादों को दबाने में असमर्थ हो द्रौपदी ने कृष्ण भगवान से रोषपूर्ण वाणी में निवेदन किया—

"हे अच्युत ! ये केश दु:शासन की उँगलियों से खिंचकर आधे कट गये, बाकी सब कौरवों ने सभा में जो अपमानजनक बातें कहीं उनसे अदृश्य हो गये हैं; अत: दूतकार्य करते समय इनका ख्याल रखियेगा।"

इसके उपरांत द्रौपदी कृष्ण को परमात्मा मानते हुए सविनय निवेदन करती है—"हे अच्युत ! मैं आपकी भगिनी हूँ। आपके प्रति भक्ति रखती हूँ। मेरे पति तेजोवान हैं, फिर भी दुष्टों के द्वारा पग-पग पर हमारा अपमान होता है। आपने दुष्टों का संहार करने व शिष्ट जनों की रक्षा करने हेतु अवतार लिया है, अत: जगत की रक्षा कीजिए।"

उद्योग पर्व में कृष्ण जब दूत बनकर कौरव-सभा में पहुँचते हैं, तब धृतराष्ट्र से पांडवों का निर्णय सरस एवं संदर्भानुसार बड़ी कुशलता के साथ सुनाते हैं और कहते हैं—ये अन्तिम वाक्य है :

"पांडव शांत वीर हैं, आपके चरणों की सेवा करने के इच्छुक हैं। यदि आप राज्य देने के इच्छुक नहीं हैं, अर्थात् यह अप्रिय हो, तो वे लोग युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं। इन दोनों मार्गों में से आपको कौन-सा ग्राह्य है, निश्चित कीजिए।"

परन्तु उनके सारे प्रयत्न विफल हुए। उलटे दुर्योधन ने अज्ञान के वशीभूत हो कृष्ण भगवान को बन्दी बनाने का असफल प्रयत्न किया। यह षड्यंत्र दुर्योधन, दु:शासन, शकुनि तथा कर्ण नामक दुष्ट चतुष्टय ने रचा था। इस षड्यंत्र को विफल सिद्ध करते हुए भगवान कृष्ण ने कौरव-सभा में अपने विश्वरूप का दर्शन कराया।

महाभारत में कृष्ण का पात्र सूत्रधार का है। द्रौपदी के मान-संरक्षण, सैंधव-वध तथा विश्वरूप का दर्शन कराने वाले सन्दर्भों में उन्होंने अपनी दिव्यता का उद्घाटन किया है। कथावस्तु के अध्ययन से हमें विदित होता है कि कृष्ण पांडव के पक्षपाती हैं, परन्तु उन्हें धर्म-पक्षपाती कहना अधिक समीचीन होगा। यदि वे केवल पांडव-पक्षपाती होते तो क्या अपने भानजे पराक्रमी अभिमन्यु का वध होने देते ? कदापि नहीं।

स्थितप्रज्ञ कृष्ण अहं तथा ममता, स्व एवं पर भेदों से अतीत रहकर साक्षीभूत हो प्रत्येक प्राणी को कर्म-फल भोगने देते रहे। वे तत्वकोविद थे।

उनके राजनैतिक कौशल का तिकन्ना ने सजीव चित्र उपस्थित किया है। व्यास महर्षि के आदर्श को तिकन्ना ने भी यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित किया है—

"भगवान वासुदेवश्च कीर्त्यतत्रे सनातन:"

अर्थात् श्रीकृष्ण के संकीर्तन से महाभारत पूजनीय हो गया है।

एर्राप्रगेड़ा ने कृष्ण के वंश का समग्र परिचय कराते हुए 'हरिवंश' नाम से एक अद्‌भुत प्रबन्ध-काव्य का प्रणयन किया और 'प्रबन्ध परमेश्वर' नाम से विख्यात भी हुए।

एर्राप्रगेड़ा के पश्चात् कृष्ण चरित को काव्य रूप देने वालों में असमान प्रतिभाशाली 'शाश्वत रसपोषण संविधान चक्रवर्ती' उपाधि से विभूषित नाचन सोमनाथ का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। इन्होंने उत्तर 'हरिवंश' नामक काव्य का सृजन कर 'नवीन गुण सनाथ' की ख्याति प्राप्त की।

शोभनाथ की कविता में एक नाद वाले पद पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं, जो शैली में रमणीयता ला देते हैं। अविदित वेद्यांतर आनन्द प्रदान करने वाली शक्ति उनकी कविता में भरपूर है।

कृष्ण-काव्यों की परम्परा में भक्त शिरोमणि बम्मेर पोतना द्वारा विरचित 'आन्ध्र महाभागवत' का अपना विशिष्ट स्थान है। भागवत पुराण से तेलुगु में एक प्रौढ़ महाकाव्य का रूप प्रस्तुत हुआ है। महाभारत के पठन के पश्चात् पोतना प्रणीत महाभागवत विशेष जनप्रिय है।

पोतना उच्चकोटि के महाकवि ही नहीं, अपितु महान भक्त भी थे। उनका काव्य जहाँ महाकाव्यों के लक्षणों से समन्वित है, वहाँ उसमें भक्ति की अन्तरधारा निश्चल, शांत एवं गंभीर ध्वनि के साथ प्रवाहित भी है। भागवत के सृजन का कारण महाकवि ने भव-बंधनों से मुक्ति पाना बताया है—

"मैं भागवत का प्रणयन कर रहा हूँ। मुझसे साक्षात् रामचन्द्रजी बुलवा रहे हैं। यदि मैं भागवत की रचना करूँ तो मुझे इस भवसागर से मुक्ति मिलेगी। ऐसी हालत में भला मैं अन्य गाथा का सृजन क्यों करूँ।"

पोतना ने भागवत की कल्पना कल्पवृक्ष से की है। इसका जो रूपक बाँधा है वह श्लेष-प्रधान है। यहाँ तक कि महाकवि ने रूपकालंकार में भागवत को ही कल्पवृक्ष के रूप में प्रतिपादित किया है। कल्पवृक्ष के लक्षणों का भागवत में निरूपण किया है।

भागवत के दशम स्कंध में पोतना ने कृष्ण के जन्म से लेकर उनकी समस्त लीलाओं का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। वैसे संस्कृत-भागवत में बीस

हजार श्लोक हैं। परन्तु पोतना का भागवत तीस हजार पद्यों से विभूषित हैं। उनमें दशम स्कंध में केवल ३१३१ छन्द हैं। यह स्कन्ध दो भागों में विभाजित है—पूर्वार्द्ध में १७८० छन्द हैं तो उत्तरार्द्ध में १३४१। भगवान कृष्ण की लीलाओं का उद्घाटन पोतना ने भक्त के आवेश में तथा तन्मयावस्था में किया है। अतः ये लीलाएँ काव्यत्व की गरिमाओं से पूर्ण होते हुए भी भक्तिपरक हैं; इसलिए सरल हृदय रखने वाले पाठक तथा श्रद्धा-भक्ति रखने वाले भक्त भी समानरूप से इस काव्य का रसास्वादन करते हैं।

माखन-चोरी का प्रसंग भी पोतना ने बड़ा ही मधुर एवं सरस बनाया है। रास-लीला के प्रसंग में पोतना ने गोपिकाओं की हृदय-विह्वलता तथा कृष्ण के वेणु-नाद के प्रति जो अनुरक्ति दर्शायी है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मुरली नाद पर मुग्ध हो कृष्ण का अन्वेषण करते गोपिकाएँ वन में आ गयी हैं, वहाँ पर कृष्ण को न पा कर कहती हैं—"हे हतविधि! हमारे बन्धु-पति, भ्रात, पुत्र सबों ने हमें आदेश दिया था कि रात्रि के समय गृह-द्वार को लाँघकर बाहर न जावें, परन्तु हमने तुम्हारे मृदुगीतों की ध्वनि के कानों में पड़ते ही विकल हो उन मर्यादाओं का अतिक्रमण किया है। हे नाथ! हम तुम पर मोहित हो यहाँ आ गये हैं, किन्तु तुम निर्दयी बनकर कहाँ चले गये हो?" कृष्ण के दर्शन कर गोपिकाएँ तन्मय हो गयीं। अनन्त विभु कृष्ण ने चित्र-विचित्र गतियों के साथ गोपिकाओं के समेत लीला की।

गोपिकाओं की चित्त-वृत्तियों, सरस-संलापों तथा अनुनय-विनय सम्बन्धी वर्णन अद्वितीय बन पड़े हैं। लता-गृहों में गोपिकाएँ कृष्ण का अन्वेषण करते पहुँच जाती हैं और मल्लिका पुरुषों से पूछती हैं—

हे मल्लिकाओ! श्याम गात्रवाले कमल नयनवाले, कृपारस की वृष्टि करनेवाले, मयूरपुच्छ धारण करनेवाले, विमल हास से पूर्ण मुखमण्डल वाले, नारियों की मान-सम्पदा का हरण किये, आकर यहाँ कहाँ छिप गये हैं; क्या तुम लोगों की झाड़ियों में कहीं छिपे तो नहीं हैं;'

पोतनाकृत भागवत में अत्यधिक रसपूर्ण प्रसंग 'रुक्मिणी परिणय' है। आन्ध्र के विवाह का सजीव चित्र इस घटना में अंकित हुआ है। रुक्मिणी की बाल्य-क्रीड़ाएँ, कृष्ण के प्रति उसके मन में प्रेमोदय का होना, पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास सन्देशा भेजना तथा रुक्मिणी-हरण बहुत ही सरसतम बन पड़े हैं।

विजयनगर साम्राज्य के अधिपति कृष्णदेव के दरबार में अष्ट दिग्गज नामक आठ महाकवि थे। इनका समय तेलुगु साहित्य का स्वर्ण युग माना

जाता है। इस युग में अनेक प्रबन्ध एवं महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। उन काव्यों में भी कृष्ण चरित पर्याप्त मात्रा में वर्णित हैं। स्वयं कृष्णदेवराय ने भी भगवान कृष्ण की स्तुति की है। परन्तु इस युग के दो-तीन काव्यों में कृष्ण का मनोहारी चित्र प्रस्तुत हुआ है। उनमें श्री नन्दि तिम्मना द्वारा विरचित 'पारिजातापहरण' तथा पिंगलि सूरना द्वारा प्रणीत 'कलापूर्णोदयम्' एवं 'प्रभावती प्रद्यु्म्नमु' उल्लेखनीय है।

'पारिजातापहरण' काव्य का नायक श्रीकृष्ण और नायिका सत्यभामा है। आलम्बन एवं उद्दीपन के विभागों का जैसा रमणीय सम्बन्ध इसमें प्रतिपादित है, वह श्लाघनीय है।

प्रथम आश्वास में नारद का स्वर्ग से पारिजात पुष्प लाकर उसकी महिमा का गान करके उसे श्रीकृष्ण को समर्पित करना—उस समय कृष्ण सत्यभामा का स्मरण करके पास में स्थित रुक्मिणी को दुखी न बनाने के विचार से उसको देते हैं। सत्यभामा की एक सखी जो वहाँ पर उपस्थित थी, वह तत्काल ही सारा वृत्तान्त नमक-मिर्च मिलाकर सत्यभामा को सुना देती है। परिणाम-स्वरूप सत्यभामा कुपित हो कोप-भवन में प्रवेश करती है। सत्या के मन्दिर में प्रवेश कर कृष्ण उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वह कृष्ण के मस्तक पर पाद-ताड़न कर अपने विरस का परिचय देती है। इस सन्निवेश का अद्‌भुत चित्रण बन पड़ा है। पात्रों के मनोभाव उन-उन परिस्थितियों में कैसा परिभ्रमण करते हैं, उनका परिशीलन कर विवेचन करना महाकवि तिमन्ना के लिए ही शक्य था।

आन्ध्र में एक दन्तकथा प्रचलित है कि विजयनगर के सम्राट कृष्णदेवराय के जीवन में भी यह घटना घटित हुई थी। राज-परिवार में यह प्रथा है कि राजा के आगमन के पूर्व शयनकक्ष में रानियाँ पैताने की दिशा में सर रखे लेटी रहती हैं और राजा के आने के पश्चात् ही उनका स्वागत कर सिरहाने की दिशा में लेटती हैं। एक बार कृष्णदेवराय की पट्टमहिषी चिन्नादेवी राजा के आने के पहले भूल से सो गयी थी। राजा ने उसे जगाया नहीं। उन्हें इस बात पर क्रोध आया कि उनके आने के पूर्व ही रानी ने सोने की धृष्टता की है और उसे जगाना अपने राजसी ठाट के विरुद्ध माना। यथा प्रकार सो गये। लेकिन गाढ़-निद्रा में जब चिन्नम्मा देवी ने करवट बदली तो उसका पैर सम्राट के सर पर जा लगा। सम्राट चौंककर जाग उठे। एक औरत का पदाघात सम्राट के लिए असह्य था। इसलिए उस दिन से सम्राट ने चिन्नादेवी के अन्तःपुर में जाना बन्द कर दिया।

चिन्नादेवी को इसका कारण ज्ञात न था। वह मन ही मन दुखी होने

लगी। उसकी व्यथा बढ़ती गयी। आखिर उसने कल्पना की कि यही कारण होगा। सम्राट से क्षमा माँगना चाहती थी। अपनी करनी पर पछता रही थी। परन्तु सम्राट से क्षमा माँगने का अवसर भी मिले तो। आखिर विवश हो महाकवि तिम्मन्ना से सारी कहानी सुनायी और उस विपत्ति से बचाने की प्रार्थना की। महाकवि चिन्नादेवी के साथ दहेज में भेजे गये थे; अतः चिन्नादेवी के प्रति बड़ी सहानुभूति और श्रद्धा रखते थे। उन्होंने दिमाग टटोला तो अन्त में उन्हें श्रीकृष्ण के जीवन में भी तत्समान घटना झलक उठी। फिर क्या था, चिन्नादेवी के नायक भी तो कृष्णदेव राय ही तो थे। उस घटना को कथावस्तु बनाकर एक प्रौढ़ प्रबन्धकाव्य का रूप दिया। कहा जाता है कि इस काव्य के श्रवण के पश्चात कृष्णदेवराय ने चिन्नादेवी के शयन-मन्दिर में जाकर बड़ी उदारता के साथ क्षमा माँगी थी।

कृष्णदेवराय के समय में पिंगली सूरना ने तीन प्रबन्धकाव्यों की सृष्टि की। इन तीनों काव्यों में कृष्ण चरित वर्णित है। उनका प्रथमकाव्य है— 'कलापूर्णोदय'। आन्ध्र की यह महिमामयी भूमि पर विकसित तेलुगु काव्योद्यान का एक अक्षय सुरभित काव्य-कुसुम है। वस्तु-कल्पना तथा विभिन्न घटनाओं की क्रम-बद्धता की दृष्टि से यह अद्वितीय है। सूरना ने अपनी उर्वर प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति के बल पर कल्पित कथा की भित्ति पर सम्पूर्ण काव्य-सौध का निर्माण किया है।

महाकवि कालिदास के सम्बन्ध में एक समीक्षक ने बताया है कि उन्होंने स्वर्ग एवं मर्त्य लोकों को एक गाँठ में बाँध दिया है यह उक्ति कलापूर्णोदय के प्रति सर्वथा ठीक बैठती है। सूरना ने मर्त्य, स्वर्ग एवं सत्य लोकों को एक ही गाँठ में बाँध दिया है। शृङ्गार रस के वर्णन में सूरना ने अत्यंत आत्म-निग्रह एवं सभ्यता का परिचय दिया है। इसके काव्य में स्वर्ग लोक के रंभा नलकूबर, मर्त्यलोक के सुगात्री-शालीन, कलभाषिणी, मणिकंधर तथा मधुर लालसा एवं कलापूर्ण की जोड़ियाँ तथा सत्यलोक की चतुर्मुख सरस्वती की जोड़ी भी अभिवर्णित हैं। प्रेयसी-प्रिय के सरस संभाषण तथा कोमल चित्त-वृत्तियों के पोषण में सूरना ने अपनी निपुणता का अच्छा प्रदर्शन किया है। अनुरक्ति एवं भक्ति के लिए समान रूप में उद्दीपन करने वाली कला संगीत है, इस सत्य का परिचय इस काव्य के द्वारा भलीभाँति हमें मिल जाता है। इसीलिए इस ग्रन्थ का नामकरण 'कलापूर्णोदय' सर्वथा सार्थक हुआ है।

कृष्णदेवराय के पश्चात् दक्षिण आन्ध्र वाङ्मय युग में कृष्ण चरित्र संबंधी अनेक काव्य-ग्रन्थ रचे गये। परन्तु उनमें यक्षगान एवं पद-साहित्य की प्रचुरता

है। प्रबन्धकाव्यों में तंजाऊर के राजा रघुनाथ राय के दरबारी कवि वेंकट कवि का 'विजय विलास' विशेष विख्यात है।

आधुनिक युग के कवियों ने श्रीकृष्ण को नायक बनाकर स्वतन्त्र काव्य-ग्रन्थों की रचना कम की हैं। श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री ने श्रीकृष्ण भागवत नाम से दो महाकाव्य लिखे हैं। लेकिन ये दोनों महाकाव्य होते हुए भी संस्कृत के काव्यों के अनुकरण पर प्रस्तुत हुए हैं। काव्यों के लक्षणों की दृष्टि से तथा मौलिक उद्भावनाओं के होते हुए भी विशेष उल्लेखनीय प्रसंग इनमें नहीं के बराबर हैं।

१३

भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य

बाल साहित्य पर विचार करते समय हमें पॉल हजार्ड की अमर कृति 'बुक्स चिल्ड्रेन एण्ड मैन' के कतिपय वाक्य स्मरण करने योग्य हैं। उसमें लेखक बाल साहित्य के सम्बन्ध में अपना निश्चित मत यों प्रकट करते हैं जो सर्वथा निर्विवाद सत्य है। वे कहते हैं—

''मैं ऐसी पुस्तकों को पसन्द करता हूँ जो साहित्य की आत्मा के प्रति वफादार होती हैं, जो बच्चों के लिए सहज और प्रत्यक्ष ज्ञान का द्वार खोल देती हैं, जो ऐसा सरल सौन्दर्य प्रस्तुत करती हैं जिसे बच्चा तुरन्त ग्रहण कर सकता है, जो बच्चे के हृदय में ऐसी चेतना और ऐसा स्पन्दन भर देती है जो बच्चों के जीवन की स्थायी संपत्ति बन जाती है जिनमें बढ़िया चित्र होते हैं—ऐसे चित्र जिन्हें बच्चे पसन्द करें, जिन्हें समस्त विश्व के कला-वैभव से चुना गया हो।

मुझे ऐसी पुस्तकें पसन्द हैं जो बच्चों को महान् मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति कराती हैं, जो ज्ञानवर्धक और नैतिक गुणों से युक्त होती हैं।''

इस कसौटी पर रचित पुस्तकें हमें भारतीय भाषाओं में बहुत कम ही उपलब्ध होती हैं।

हमारे देश में आज तक बाल साहित्य उपेक्षित रहा है। पाश्चात्य देशों में बाल साहित्य के सृजन, प्रकाशन, रचना-प्रक्रिया, स्तर, उपयोगिता, मनोवैज्ञानिकता इत्यादि विभिन्न पहलुओं पर जो चिन्तन, मनन और जो प्रयोग हुए वे भारतीय भाषाओं के संदर्भ में नगण्य हैं। विदेशों में जहाँ मूर्धन्य साहित्यकारों ने इस विधा को साहित्य का एक अभिन्न अंग मानकर उसके विकास में स्पृहनीय योगदान दिया, वहाँ पर भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य के उन्नयन में सराहनीय प्रयत्न नहीं हुआ है। विदेशों में बच्चों को जो शिक्षा दी जाती है वह पद्धति अपूर्व है। वहाँ पर बच्चों के पालन-पोषण में विशेष

ध्यान दिया जाता है, बच्चों के ज्ञानवर्धन और मनोरंजन की दिशा में भी उन देशों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। बच्चों के लिए वहाँ पर लाखों और करोड़ों की संख्या में पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। उनके वास्ते विशेष प्रकार के शिक्षालय, स्वास्थ्य के केन्द्र, क्रीड़ा-स्थल और फिल्म आदि बनायी जाती हैं। विशेषकर बच्चों के लिए अत्यंत श्रम उठाकर जो कथा-कहानियाँ तैयार की गयी हैं, उनकी संख्या को देखते हुए आश्चर्य होता है। बच्चों के लिए असंख्य गीतों के संकलन और ज्ञान-कोष (encyclopaedia) प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही बच्चों के वास्ते विशेष प्रकार के संग्रहालय निर्मित हैं। उन देशों ने भलीभाँति यह अनुभव किया है कि बच्चों की प्रगति और उनके योग-क्षेम पर ही उस जाति का भविष्य निर्भर है। बहुत समय पूर्व ही हमारे भूतपूर्व राष्ट्र-नेता पंडित नेहरू ने अनेक देशों के पर्यटन के पश्चात्, यह अनुभव किया था कि रूस आदि अनेक पाश्चात्य और पूर्वी देशों में भी बच्चों के प्रति जो विशेष ध्यान दिया जाता है, उनके वास्ते विशिष्ट प्रकार के साहित्य का सृजन होता है और उन्हें सुधारात्मक शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उन देशों ने जो विभिन्न प्रकार के प्रयास किये उनमें उन देशों ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी वर्षगाँठ नवंबर १४ को बाल-दिवस के रूप में मनाने की परम्परा डाली थी।

वास्तव में स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश में भी बाल साहित्य के सृजन व प्रकाशन में विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठागोर आदि महान् लेखकों ने बाल-साहित्य की रचना में विशेष रुचि ली और सुन्दर पुस्तकें प्रस्तुत कीं।

मेरी दृष्टि में बाल साहित्य वह है जो बच्चों के पढ़ने योग्य हो, रोचक हो, उनकी जिज्ञासा की पूर्ति करने वाला हो। उसमें अनावश्यक वर्णन न हो और बुनियादी तत्वों का चित्रण हो। कथा-वस्तु में अनावश्यक पेंचीदगी न हो। वह सरल, सहज और समझ में आने वाला हो। सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत तथ्यों को प्रतिपादित करने वाला हो।

बाल साहित्य में ऐसे भी विषयों का प्रतिपादन हो जो सामाजिक मूल्यों की रक्षा करने वाले हों। साथ ही बच्चों के नैतिक स्तर को उठाने वाला हो। बच्चों में साहस और धैर्य की भावनाएँ पैदा करने वाला हो। उसमें अन्ध-विश्वासों का प्रतिपादन न हो, बल्कि अंधविश्वासों को दूर करने की प्रेरणा पैदा करने वाला हो। ये गुण बाल साहित्य के प्रयोजन कहे जा सकते हैं।

बाल साहित्य पर विचार करते समय हमें खासकर तीन बिन्दुओं पर अधिक ध्यान देना होगा—सृजन, प्रकाशन और उपलब्धि। बाल साहित्य के

लेखन में बच्चों की मानसिकता को जाने बिना जो साहित्य प्रस्तुत किया जाता है, उसके द्वारा हमें वांछित फल प्राप्त नहीं होते ।

आज के अधिकांश लेखक बाल साहित्य की मात्र आलोचना करना और अन्य पत्रिकाओं पर व्यंग्य करना, अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठे हैं और यह सोचकर संतोष की साँस लेते हैं मानो उन्होंने बहुत बड़ा कार्य संपन्न किया है । किन्तु रचनात्मक दृष्टि से इस दिशा में उनका योगदान नहीं के बराबर होता है । वे यह नहीं बताते कि श्रेष्ठ बाल साहित्य के लक्षण क्या हैं और इस दिशा में हमारा कर्त्तव्य क्या है ?

यह बात सभी लोग स्वीकार करेंगे कि बाल साहित्य रोचक, सरल, सरस और उपादेय हो । पर इसके साथ ही उसकी भाषा सरल और बोधगम्य हो । आज के बालक का बौद्धिक स्तर बड़ा ही ऊँचा होता जा रहा है । आयु-वर्ग की दृष्टि से भी साहित्य भिन्न हो सकता है । प्रारम्भ में हम बच्चों को ऊँचे बौद्धिक स्तर का साहित्य दें तो वे पूर्ण रूप से हृदयंगम कर उसका लाभ उठा नहीं पायेंगे, इसीलिए प्रारम्भिक बाल साहित्य में कुतूहल और जिज्ञासा की पूर्ति करने वाली सामग्री भरपूर हो और साथ ही वह साहित्य उनका मनोरंजन करने वाला हो और ज्ञान-वर्द्धक भी हो । जैसे-जैसे उनका मानसिक विकास होता है, उसके अनुरूप साहित्य देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है ।

हम बालकों से क्या अपेक्षा करते हैं ? बच्चों का निर्माण हम किस रूप में करना चाहते हैं आदि मूलभूत प्रश्न हैं । इन प्रश्नों का समाधान हम बड़ी आसानी से ढूँढ सकते हैं । विश्व की श्रेष्ठ बाल साहित्य की जिन कृतियों ने बच्चों को विशेष रूप से आकृष्ट किया है, उनके मूल में कौन से तत्व प्रतिपादित हैं, मेरे मत में प्रारम्भ में उन्हें ऐसा साहित्य देना चाहिए जिससे बच्चों के भीतर साहित्य पढ़ने की अभिरुचि जागृत हो । बच्चों को साहित्य के प्रति उन्मुख करने के पश्चात् हम उन्हें क्रमशः विविध प्रकार की सामग्री दे सकते हैं ।

आखिर हमारा लक्ष्य बच्चों को उत्तम भावी नागरिक बनाना है । इसलिए उन्हें अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध कराने वाला साहित्य देना परमावश्यक हो जाता है । अतः हम जो साहित्य उन्हें देते हैं वह बच्चों के भीतर साहस, पराक्रम, नैतिक बल, स्वावलंबन, चरित्र-निर्माण, देश-भक्ति, सेवाभाव, आत्मरक्षा आदि गुणों का पोषण करने वाला हो । परन्तु वह साहित्य उपदेशात्मक न हो । उनमें अंधविश्वास के बजाय तार्किक बुद्धि, विवेकशीलता और दृढ़ता पैदा करें—ये गुण नितांत आवश्यक हैं । क्योंकि बच्चों की अवस्था के बढ़ने के साथ उनकी कल्पना

और भावना शक्ति भी बढ़ती जाती है। साथ ही साथ उनमें हेतुवाद को समान्तर रूप में जाग्रत करने का प्रयास होना चाहिए।

बाल साहित्य के क्षेत्र में संसार भर में जो लोकप्रिय ग्रन्थ हैं, जिन्हें बच्चों ने बहुत ही रुचि के साथ पढ़ा, उन पुस्तकों में बालकों का मनोरंजन करने की असीम शक्ति के साथ अपूर्व रोचकता भी थी। विश्व की महान् कृतियों में पंचतंत्र, गलीवर की कहानियाँ, राबिन्सन क्रूसो, ट्रेजर ऐलाण्ड, ईसफ की कथाएँ, एलिस इन द वन्डरलैण्ड आदि महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन कृतियों के पात्र पशु-पक्षी और बच्चे हैं। ये कृतियाँ बहुत पुरानी हैं, फिर भी आज भी बच्चे बड़ी रुचि के साथ पढ़ते हैं। उपर्युक्त कृतियों में नीति, उपदेश, साहस, अनोखी सूझ-बूझ, समयस्फूर्ति तथा अन्य शाश्वत मूल्यों के गुण विद्यमान हैं। साथ ही उनमें ऐसे भी तत्व हैं जिनमें उन सारी बातों पर चिंतन किया हुआ है जो जीवन और जगत् से जुड़ी हुई हैं। इन कृतियों की लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं और विश्व की तमाम भाषाओं में इनका रूपान्तर हो चुका है। सभी भाषाओं, समाजों और देशों के बच्चों ने इन कहानियों को खूब पढ़ा और सराहा। इन कहानियों में परी-कथाएँ भी हैं।

ग्रिम ब्रदर्स की कहानियों में भूत-प्रेत आदि पात्रों के साथ जानवरों की चर्चा भी अधिक हुई है। जानवर परस्पर बात भी करते हैं। पर एण्डरसन की कहानियाँ इससे भिन्न हैं। उनमें घरेलू वातावरण का चित्र ज्यादा मिलता है। बच्चों की कल्पना और उनकी समस्याओं को उजागर करने का इन कृतियों में प्रयास हुआ है, यही कारण है कि ये कृतियाँ विश्व भर में विशेष रूप से लोकप्रिय हुई हैं।

विश्व-कथा-साहित्य के अध्ययन से हमें यही विदित होता है कि प्रारम्भ में श्रेष्ठ लेखकों ने बाल साहित्य की रचना करने में संकोच का ही अनुभव किया था। स्वयं चार्लेस लुडविग डाग्सन जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में गणित-शास्त्र के प्रोफेसर थे, उन्होंने लुई करोल नामक उपनाम से अपनी कहानियाँ प्रकाशित की थीं, जो मैकमिलन कंपनी से १८६४ में छपी थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार बाल साहित्य प्रारम्भ में अनादृत ही रहा, यही बात भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भी कही जा सकती है।

भारतीय भाषाओं में भी प्रारम्भ में विश्व की इन महान कृतियों के अनुवाद हुए। पंचतंत्र के साथ हितोपदेश, कथा सरित्सागर, बेताल कथाएँ, विक्रमादित्य की कहानियाँ, जातक कथाएँ, अरेबियन नाइट्स, सोहराब और

रुस्तम, सिन्दबाद की कहानियाँ, परी-कथाएँ, लोक कथाएँ, बीरबल, तेनालीराम जैसे विदूषकों की कहानियाँ, पुराण—महाकाव्य, संस्कृत के प्रसिद्ध नाटकों की कहानियाँ, उपनिषद् की कहानियाँ प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में रची गयी हैं या अनूदित हुई हैं। ये सारी कहानियाँ बच्चों में बहुत लोकप्रिय भी हुई हैं। परन्तु डॉ० हरिकृष्ण देवसरे के कथनानुसार समाजवादी दृष्टिकोण पर उन पौराणिक और प्राचीन साहित्य की कथाओं का आज के संदर्भ में, आज की स्थिति तथा आज के बच्चों की मानसिकता के अनुरूप उन कहानियों का पुनर्लेखन होना चाहिए। पर साथ ही हमारे प्राचीन कथा साहित्य भण्डार से पहले बच्चे अवगत हो जाएँ और उनसे अपनी कल्पना शक्ति और भावना की परिपुष्टि करें तब अपने मानसिक विस्तार के अनुरूप ज्ञान-विज्ञान तथा जीवन से जुड़े हुए अन्यान्य क्षेत्रों की समस्याओं से सम्बन्धित कहानियों तथा साहित्य की अन्य विधाओं का ज्ञान प्राप्त करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

विश्व की प्रायः प्रत्येक भाषा की प्रारम्भिक बाल कृतियों में अद्भुत कथाएँ, पशु-पक्षियों की कहानियाँ, नीति व उपदेशात्मक कहानियाँ और साहसिक कथाएँ पायी जाती हैं। ये कहानियाँ ही वास्तव में बच्चों की जिज्ञासा की परिपूर्ति करके साहित्य पढ़ने की ओर प्रवृत्त करती हैं। यदि हम उन्हें यह साहित्य पढ़ने न दें तो संभवतः अधिकांश बालक-पाठकों से हम लोग वंचित रह जायेंगे।

भारत जैसे देशों में ही नहीं, साम्यबादी तथा समाजवादी देशों में भी आज भी बालकों को प्रारम्भ में परी-कथाएँ, पशु-पक्षियों की कथाएँ पढ़ने को ही दी जाती हैं। वहाँ की लोक-कथाओं के पात्र पशु-पक्षी हैं। आये दिन प्रकाशित होने वाले विदेशी बाल साहित्य की पत्रिकाओं में आज भी उन्हें हम देख सकते हैं। वहाँ के देश अधिक जागृत होते हुए भी परम्परा एवं रूढ़िवाद से दूर रह कर भी धर्म, दर्शन इत्यादि को न मानते हुए भी उन कहानियों को बच्चों से क्यों पढ़वाते हैं ? वे मानते हैं, कोरी कल्पना, भावना, अद्भुत घटनाओं में भी अगर कहीं कोई यथार्थ सत्य हो तो बच्चे अपनी विवेकशीलता के साथ उसे ग्रहण करें, अच्छे-बुरे का विवेचनात्मक दृष्टिकोण को वे विकसित करें। इस तरह की विवेचनात्मक शक्ति प्राप्त करने के पश्चात् उनकी बौद्धिक प्रतिभा के अनुरूप ज्ञानवर्द्धक बाल साहित्य दिया जाता है। भारतीय भाषाओं में भी यही क्रम पाया जाता है।

भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत बाल साहित्य का समग्ररूप में अनुशीलन

करना इस छोटे से निबन्ध में संभव नहीं है; अतः अति संक्षेप में उस पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा ।

असमिया :

भारत की पूर्वांचलीय भाषाओं में असमिया भाषा का साहित्य किसी भी दृष्टि से अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में कम समृद्ध नहीं है । प्रारम्भिक अवस्था में असमिया भाषा में भी परी-कथाओं, लोक-कथाओं और देश-विदेश की लोकप्रिय बाल कथाओं की भरमार पायी जाती है । किन्तु क्रमशः वहाँ के बाल साहित्यकारों का दृष्टिकोण युग के अनुरूप बदलता गया । सर्वश्री नवकांत बरुआ, प्रेमधर दत्त, डॉ० वाणी कांत काकति, प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, महादेव शर्मा, वेणुधर शर्मा, महेश्वर नेओग, सैयद अब्दुल मालिक, निर्मला, प्रभा रघुनाथ चौधरी, कीर्तिनाथ हाजरिका, हरेन्द्रनाथ शर्मा, यतीन्द्रनाथ गोस्वामी प्रभृति ने आधुनिक युगबोध के अनुरूप उत्तम बाल साहित्य प्रस्तुत किया है ।

बालकों को वैज्ञानिक साहित्य प्रदान करने के ख्याल से असमिया के लेखकों ने आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को सरल एवं सरस भाषा में बालकोपयोगी बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । ऐसे लेखकों में द्वीपेन्द्रनाथ शर्मा, शांति राम दास, लक्ष्मीशेखर बरुआ इत्यादि का प्रयास अभिनन्दनीय है । उनके द्वारा विरचित कृतियों में 'महाकाश अभियान', 'विज्ञान अरु वैज्ञानिक', 'इलेक्ट्रसिटी' वगैरह रचनाएँ उल्लेखनीय हैं ।

असमिया भाषा में बाल नाटकों के कृतित्व के साथ विविध विधाओं पर भी पुस्तकें रची गयी हैं । बाल नाटककारों में कीर्तिनाथ हजारिका, हिरण्यमयी देवी, प्रेमनारायण, मुक्तिमाल बरदलै, नलिनीबाला देवी के नाटक मंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनीत हुए हैं ।

अन्य विधाओं की रचनाओं में रघुनाथ चौधरी कृत 'मानव सभ्यता', लक्ष्मीनन्दन बरा द्वारा रचित 'गाँवरे स्वर्ग रचो', अनिलकुमार शर्मा की 'जीव जन्तुर साधु', क्षेमेन्द्र द्वारा विरचित 'सागरिका', निर्मलेश्वर की 'आमार इह पृथिवीरतन' आदि स्मरणीय हैं ।

असमिया में बाल पत्र-पत्रिकाओं का अभाव खटकता है, पर वहाँ के दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों में बच्चों के वास्ते बाल-स्तंभ के अन्तर्गत बालकोपयोगी रचनाएँ प्रकाशित होती हैं । विशेषकर बच्चों के लिए प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में 'दीपक' और 'जोन बाहें' नामक इस संदर्भ में गणनीय हैं ।

ओड़िया :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ओड़िया में जो बाल साहित्य रचा गया, वह आज की कसौटी पर श्रेष्ठ कहा नहीं जा सकता। पर पाँचवीं दशक में जो बाल साहित्यकार उभर आये, उनमें कविता के क्षेत्र में गोपाल महाराज, नन्दकिशोर बल, मधुसूदन दास, मृत्युंजय रथ, पद्मचरण पटनायक, द्विजेन्द्र-लाल बशू, उपेन्द्र त्रिपाठी, लक्ष्मीकान्त महापात्र, कुँजबिहारी दास, अनंतचरण शतपथी आदि हस्ताक्षर आदर के साथ लिये जा सकते हैं। स्वाधीनता के पश्चात् ओड़िया के श्रेष्ठ कलाकारों ने बाल-साहित्य के प्रति अपने दायित्व का अनुभव किया और बच्चों के लिए सुन्दर पुस्तकों की रचना की। इस समय की रचनाओं में मनोवैज्ञानिकता और प्रयोगवादिता के साथ शैली की सरसता भी दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन एवं पौराणिक साहित्य को भी नये संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ। इस प्रकार की कृतियों में महामानव, मिनिर मनकथा इत्यादि गणनीय हैं। सौर जगत, दूर देश की कथा, आविष्कार और उद्‌भावन इत्यादि वैज्ञानिक कृतियों के साथ मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत बाल साहित्य भी प्रस्तुत हुआ है। कविता के क्षेत्र में गोदावरीश कृत छविर, कविता, उपेन्द्र त्रिपाठी द्वारा रचित पिलांक पशु-पक्षी पुराण तथा निशा राक्षसी, निकुज; कानूनगो कृत 'इन्द्रधनु', विश्वनाथ पाइक राय का 'राष्ट्रीय संगीत' इस दिशा में उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। कहानी के क्षेत्र में दर्जनों लेखकों ने नये-नये प्रयोग किये हैं। उदयनाथ पडंगी की मांकडर देश भ्रमण, 'बडकिए', जगन्नाथ महांतिकी 'नयों मडीला', दुर्गाप्रसाद पटनायक की 'मोखाट घोड़ा', 'कथाकहे' इत्यादि आदर के साथ ली जा सकती हैं। अन्य लेखकों में गणेश्वर महापात्र, लोक-नाथ नन्द विविध विधा की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं।

वैज्ञानिक सम्बन्धी रचनाएँ करने में गोकुलानन्द , महापात्र शांतनुकुमार आचार्य, वासुदेव त्रिपाठी के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

बाल एकांकी की रचना में योगेन्द्रनाथ पटनायक, सूर्यचन्द्र नन्द जहाँ प्रसिद्ध हैं वहाँ बाल उपन्यास के क्षेत्र में डॉ० जयकृष्ण माहंती और चन्द्रशेखर महापात्र लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं।

कन्नड़ :

प्रारम्भ में कन्नड़ बाल साहित्य के क्षेत्र में मैकमिलन कंपनी मद्रास, बाल साहित्य मण्डल मंगलूर ने प्रशंसनीय कार्य किया है। ए० एस० कामत ने बच्चों के लिए कई नाटक लिखे। डी० के० भरद्वाज भी नाटक के क्षेत्र में

आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं। अन्य बाल साहित्य के विशिष्ट लेखकों में डॉ० शिवराम कारंत का योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने बच्चों के वास्ते कहानियों के साथ गीतों की भी रचना की है। मंगलकूट नाम से बालकों के लिए एक संस्था स्थापित कर प्रतिवर्ष उनके द्वारा मंचन कराने के लिए कई रोचक नाटक भी लिखे। साथ ही बाल प्रपंचं नाम से बच्चों के लिए तीन भागों में इन्होंने एक सुन्दर विश्व-कोष भी प्रस्तुत किया है। मैसूर की चिल्ड्रेन बुक कौन्सिल संस्था के द्वारा भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है।

अन्य बाल साहित्यकारों में सर्वश्री जी० पी० राजरत्नम, होइसलजी, आर० के० नारायण इत्यादि के नाम अविस्मरणीय हैं। कन्नड़ में बालकों के लिए उपन्यास भी कम नहीं रचे गये हैं। वैसे विज्ञान सम्बन्धी बाल साहित्य भी कन्नड़ में उपलब्ध हैं, किन्तु अधिकांश साहित्य या तो अंग्रेजी से अनूदित हैं, अथवा अनुकरणात्मक हैं। साउथ इण्डियन बुक ट्रस्ट द्वारा भी बच्चों के लिए कन्नड़ की पुस्तकें प्रस्तुत हुई हैं, किन्तु उनमें अधिकांश इतर भाषाओं से अनूदित हैं।

श्री डी० के० मूर्ति ने 'मक्कल पुस्तकमाला' द्वारा बच्चों के लिए पर्याप्त पुस्तकें उपलब्ध करायी है।

तमिल :

तमिल में भी प्रारम्भ में अन्य भाषाओं की भाँति प्राचीन कथा साहित्य पर बालकों के लिए पुस्तकें रची गयी हैं। प्राचीन काल में तमिल की प्रसिद्ध कवयित्री अव्वैयार ने गीत शैली में बच्चों के लिए बहुत ही रोचक पुस्तकें प्रस्तुत की थीं तो आधुनिक युग में महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ने 'नयी आत्ति चूँडि', 'पाप्पा पाट्टु' तथा 'ओडि विलैयाडु पाप्पा' जैसे बाल गीतों की रचना करके सुन्दर एवं स्वस्थ बाल साहित्य की नींव डाली। अन्य श्रेष्ठ बाल-साहित्य-कारों में नमः शिवाय मुदलियार, भारती दासन, देशिक विनायकम पिल्लै, वल्लि-यप्पा के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिये जा सकते हैं। इन महानुभावों ने असंख्य गीत और कविताएँ रचकर न केवल तमिल बाल साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया, अपितु भावी बाल साहित्यकारों के लिए सुन्दर पाठक वर्ग भी तैयार किया। उपर्युक्त कलाकारों की रचनाएँ केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के द्वारा भी पुरस्कृत हैं। बल्लियप्पा को 'कुलंदै कविञ्गर' याने बालकों के कवि नामक उपाधि से भी विभूषित हैं। पेरियस्वामी, तूरन, पी० आर० चूड़ामणि, कोत्त मंगलम सुब्बु, र्णिकै उलगनाथन, भरतन, तंबि श्रीनिवासन, तमिलगन, तिरुच्चि वासुदेवन की सेवाएँ इस दिशा में सदा अविस्मरणीय ही

रहेंगे। श्रीलंका के तमिल बाल कवियों में, नवालियूर सोमसुन्दर पुलवर वगैरह विशेष रूप से लोकप्रिय हैं।

गद्य साहित्य में राज चूणामणि का योगदान प्रशंसनीय रहा है। अन्य बाल साहित्य के विशिष्ट कलाकारों में राजाजी का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा। तमिल के चोटी के कलाकारों ने भी बालकों के लिए असंख्य स्तरीय पुस्तकें लिखकर तमिल बाल साहित्य को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिकाअदा की है। ऐसे महानुभावों में ती० जा० रंगनाथन, कल्कि, कि० वा० जगन्नाथन, अकिलन, तुमिलन के नाम तमिल बाल साहित्य के क्षेत्र में गर्व के साथ लिये जा सकते हैं। बाल साहित्य की अन्य विधाओं के रचनाकारों में सर्वश्री पी० एन० अप्पुस्वामी, वानमामलै, नागराजन, कलिव गोपालकृष्णन, एम० एल० वरदराजन, श्रीमती शांता लक्ष्मी प्रभृति ने गणनीय कार्य किया है।

तमिल बाल साहित्य के क्षेत्र में श्री पेरियस्वामी तूरन के सम्पादकत्व में प्रस्तुत बालरलैवकल चियम, याने 'बाल विश्वकोश' एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। यह कई खण्डों में प्रस्तुत है।

तेलुगु

इस सदी के दूसरे दशाब्द में तेलुगु में बाल साहित्य लेखन का शुभारम्भ हुआ। प्रारम्भ में संस्कृत तथा अंग्रेजी की उत्कृष्ट बाल कृतियों का या तो रूपान्तर हुआ अथवा उनको आधार बनाकर लेखकों ने अपनी भाषा में पुस्तकें प्रस्तुत कीं। साथ ही परी-कथायें, लोक-कथाएँ अधिक संख्या में रची गयीं। किन्तु तेलुगु की प्रथम उल्लेखनीय कृति डॉ० गिडुगु सीतापति द्वारा विरचित बालानन्दम् है जो तेलुगु भाषा समिति द्वारा पुरस्कृत भी है। तेलुगु के विख्यात कवि गुरुजाड अप्पाराव, श्री श्री आदि ने भी बच्चों के लिए सुन्दर रचनाएँ की हैं। श्री कवि रावु, बी० वी० नरसिंहाराव, नंडूरि राममोहन, अलपति वगैरह बच्चों के लिए गीत लिखने में विशेष प्रिय हुए हैं। ये सब अपनी बालकृतियों के लिए भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकार द्वारा भी पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। बी० वी० नरसिंहराव 'बाल बन्धु' नाम से विख्यात हैं। वैज्ञानिक ढंग पर लिखी गयीं इनकी रचनाएँ, बच्चों की मानसिकता के अनुरूप में हैं। ऐसे गीत-संग्रहों में 'बाल हृदयमु', 'आवु-हरिश्चन्द्र' प्रसिद्ध हैं। कवि राव कृत 'बोम्मरिल्लु' (घरौन्दे) गीत कथायें पर्याप्त लोकप्रिय हैं। तेलुगु की बालकृतियों में दो दर्जनों से अधिक केन्द्रीय शासन द्वारा पुरस्कृत हैं। मागंटी बापिनीडु ने बच्चों के लिए छोटा-सा विश्वकोश ही तैयार किया था। चिंता दीक्षितुलु ने 'सूरी-सीता-वेंकी' पात्रों के माध्यम से बहुत सुन्दर कहानियाँ प्रस्तुत की

है। अन्य उल्लेखनीय साहित्यकारों में नार्ल चिरंजीवी, वेंकटरामचन्द्र मूर्ति, न्यापति राघवराव दंपति, शशांक, टी० रामचन्द्र राव, के० एल० नरसिंहाराव, श्रीवास्तव, के० सभा, एल्लोरा दाशरथि, नारायण रेड्डी इत्यादि की रचनायें विशेष लोकप्रिय हुई हैं। बाल उपन्यास के लेखकों में सर्वश्री बलिवाड कांताराव, अन्ने उमामहेश्वर राव, दिगवल्लि शेषगिरि राव प्रसिद्ध हैं। डॉ० वेलगा वेंकटघया चौधरी का योगदान अविस्मरणीय है।

तेलुगु में विज्ञान सम्बन्धी भी पुस्तकें बच्चों के लिए पर्याप्त मात्रा में रची गयी हैं। विज्ञान सम्बन्धी प्रायः हर विषय का स्पर्श करने हुए वेमराजु भानुमूर्ति, बसन्तराव वेंकटराव, कोड वटिगंटि कुटुम्बराव ने सराहनीय कार्य किया है। एकांकी के क्षेत्र में भी तेलुगु भाषा पीछे नहीं है। बच्चों के लिए रचित अनेक मौलिक एकांकी सफलतापूर्वक मंचित हुए हैं। ललित कलाओं पर भी सुलभ शैली में बच्चों के वास्ते पुस्तकें उपलब्ध करायी गयी हैं।

इस समय आन्ध्र प्रदेश सरकार बच्चों के वास्ते अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के सन्दर्भ में पचास लाख रुपये व्यय करके एक विश्वकोश सोलह जिल्दों में प्रस्तुत करने की योजना बना चुकी है। विभिन्न रंगों में छपनेवाले इस कोश की पच्चीस हजार प्रतियाँ पाठशालाओं में मुफ्त में वितरित की जायेंगी, यह तेलुगु भाषा-भाषी बच्चों के लिए एक विशेष उपलब्धि ही कही जायेगी।

पंजाबी :

पंजाबी में बाल साहित्य के लेखन और प्रकाशन बड़े ही विलम्ब के साथ हुआ। वैसे बालक नाम से तीस-चालीस वर्ष पूर्व ही निकली, जिसके माध्यम से कथा, कहानियाँ व गीत बच्चों के लिए उपलब्ध होने लगे। परन्तु ५वें दशक में प्रकाशित दूर दुराडे देश इत्यादि बहुत ही लोकप्रिय हुईं। पंजाबी भाषा के बाल लेखकों में सर्वश्री प्यारा सिंह सहराई, ओम्प्रकाश, गुरुदयाल सिंह, बलवंत सिंह आदि जाने-माने लेखक माने जाते हैं। कथा साहित्य के लेखन में ओमप्रकाश (सुने-सुनाओ), राजदुलारे (कर भला-सो हो भला), गुरुदयाल सिंह (टुक्क खौह लए कांबां) नामी लेखक माने जाते हैं। पंजाबी में ज्ञान सम्बन्धी भी रचनाएँ बच्चों के लिए रची गयी हैं, जिनमें शमशेर सिंह, अनवंत कौर, अवतार सिंह, दीपक की कृतियाँ बच्चों में विशेष प्रचलित हैं।

हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में बलवंत सिंह शीतल और प्यारा सिंह दाता का योगदान प्रशंसनीय है।

बंगला :

बंगला बाल साहित्य के उत्थान में वहाँ के विशिष्ट कवि, कथाकार एवं मनीषियों ने स्पृहनीय योगदान दिया है। मोहित घोष का कविता संग्रह 'टापुर टुपुर' (रिमझिम), निर्मलेन्दु गोस्वामी 'खेलार राज्ये', मंजिल सेन की 'पडुआ' इत्यादि कविता-पुस्तकें न केवल लोकप्रिय हुईं बल्कि भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हैं।

बंगला के यशस्वी कथाकार प्रेमेन्द्र मित्र ने बच्चों के लिए आधे दर्जन के करीब उत्कृष्ट बाल कृतियाँ प्रस्तुत कीं, जिनमें कुछ पुस्तकें पुरस्कृत भी हैं। इनकी बात पुस्तकों का कथानक, धनादा है जिस पात्र के नाम से प्रायः इनकी सारी पुस्तकें लोकप्रिय हुई हैं। 'धनादार गल्प' इनकी सर्वोत्तम कृति है। नारायण गंगोपाध्याय बाल साहित्यकारों के सिरमौर हैं। इनकी रचनाओं के दो विशेष पात्र हैं—पैला और टेनिदा। इनकी रचनाएँ हास्य रस के उत्कृष्ट नमूने कहे जा सकते हैं। अन्य बाल लेखकों में श्रीमती लीला मजुमदार, सत्यजित राय, शिवराम चक्रवर्ती, शरदिन्दु बन्द्योपाध्याय, इन्दिरा देवी, रवीन्द्रनाथ ठागोर, प्रशांत चौधरी, योगेन्द्रनाथ सरकार, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय, आशापूर्णा देवी, बुद्ध देव वसु, नृपेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय आदि विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। संभवतः किसी भारतीय बाल साहित्य के क्षेत्र को ऐसे महान कलाकारों का योगदान उपलब्ध नहीं हुआ है। प्रेमेन्द्र के धनादा की भाँति सत्यजितराय का 'प्रोफेसर शंकू' का पात्र अपनी विशेषता के लिए बेजोड़ है।

बंगला में बच्चों के लिए जितनी और जैसी उत्तम पत्रिकाएँ छपती हैं शायद और भाषाओं में नहीं।

मराठी :

मराठी का बाल साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। उस भाषा में आयु वर्ग की दृष्टि से शिशु, बाल और किशों का वर्गीकरणात्मक साहित्य प्रस्तुत हुआ है। मराठी के अधिकांश बाल साहित्यकारों का ध्यान सदैव इस बात की ओर रहा है कि हम क्या लिख रहे हैं ? हम किसके लिए लिख रहे हैं ? यही कारण है कि इस भाषा में रचित बाल साहित्य में वैविध्य के साथ व्यापकता भी दृष्टिगोचर होती है।

मराठी भाषा के प्रारम्भिक बाल साहित्यकारों में सर्वश्री गोपीनाथ तलवलकर, बा० रानडे, कवि मायादेव आदि के नाम सादर लिये जा सकते हैं।

बाल साहित्य के सृजन प्रकाशन के क्षेत्र में ही नहीं अपितु प्रोत्साहन की दृष्टि से भी महाराष्ट्र सरकार ने जो उत्साह दिखाया, वह प्रशंसनीय है। इस भाषा में बाल साहित्यकारों की संख्या इतनी अधिक है, सब का नामोल्लेख करना भी सम्भव नहीं है, परन्तु सर्वश्री ग० दि० माडगूलकर परांजपे, शं० र० देवले, मंगल बेढेकर, म० रा० भागवत मंगेश पाड गाँवकर, दाणेकर, भैयासाहब ओकार, आदि ने बाल साहित्य की समृद्धि में जो योगदान दिया है, वह सदा अविस्मरणीय है।

मराठी की बाल पत्रिकाओं ने भी स्तर व उपादेयता की दृष्टि से बच्चों के दिलों में अपना अमिट स्थान बना लिया है। मराठी बाल साहित्य को महिलाओं का योगदान भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है। बाल-लेखक व लेखिकाओं ने अल्पायु में ही बाल साहित्य का सृजन कर इस क्षेत्र में अनूठा मानदण्ड स्थापित किया है। ऐसे साहित्यकारों में माधुरी पारसनीस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने अपनी छः वर्ष की आयु में ही कविताएँ रचकर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है।

मराठी भाषा में बच्चों के लिए विविध विधाओं की पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के साथ उत्तम श्रेणी के विश्वकोशों का भी निर्माण हुआ है।

गुजराती :

इस भाषा में भी प्रारम्भ में बच्चों के वास्ते नीति, उपदेश व सदाचार पर पुस्तकें रची गईं और विश्व गाथा-साहित्य-भंडार को रूपांतरित किया गया, पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् बाल साहित्य की ओर अधिकांश लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इतनी संख्या में बाल साहित्य की सर्जना में प्रवृत्त सबका परिचय सम्भव नहीं है।

पर अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम रही। इस विधा की समृद्धि में हाथ बँटाने वाले कलाकारों में जयभिक्खु जीवराम जोशी, श्रीकांत त्रिवेदी, यशवंत मेहता, हरीश नायक, गिरीश गणात्रा, देवेन्द्र कुमार पण्डित वगैरह के नाम अग्रिम पंक्ति में गिने जा सकते हैं।

कविता के लेखन में सुरेश दलाल, जतीन आचार्य, बाल मुकुन्द दबे, रमणलाल सोनी, त्रिभुवन व्यास जहाँ प्रसिद्ध हैं वहाँ नाटकों की रचना में यशवंत पण्ड्या, धराणी, इन्द्र बसावड़ा, हिम्मतलाल दबे अपने नाम को उजागर किये हुए हैं।

अन्य विधाओं के साहित्यकारों में शिशुभाई त्रिवेदी, सोमालाल शाह गणनीय हैं।

हिन्दी :

संख्या की दृष्टि से हिन्दी में बाल साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा गया है। स्थरीय बाल साहित्य का भी हिन्दी में अभाव नहीं है किन्तु हिन्दी के विख्यात लेखकों ने इस विधा की समृद्धि में कोई विशेष अभिरुचि नहीं दिखाई, पर इस विधा को जिन लेखकों ने अपनाया उनमें कवियों की संख्या अधिक है। ऐसे कलाकारों में सर्वश्री सोहनलाल द्विवेदी, द्वारकाप्रसाद माहेश्वरी, निरंकार देव सेवक, राष्ट्रबन्धु, चन्द्रपाल सिंह यादव, रामावतार चेतन, चिरंजीत, रामचन्द्र तिवारी, कपिल, धर्मपाल शास्त्री रघुवीर शरण मित्र, रामेश्वर दयाल दुबे के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

वैसे हिन्दी के यशस्वी लेखक इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा प्रभृति ने ऐतिहासिक कथाएँ प्रस्तुत करके हिन्दी बाल साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति में प्रशंसनीय योगदान दिया है।

हिन्दी में अनुवाद साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। प्रायः सभी प्रकाशकों तथा सरकारी व अर्ध सरकारी संस्थानों ने विविध प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित कर बाल साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया, परन्तु यहाँ उनका नामोल्लेख तक सम्भव नहीं है। लोक-कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, नीति-कथाएँ, हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ हजारों की संख्या में रची गयी हैं। बाल-पाकेट बुक्स के नाम पर सैकड़ों पुस्तकें बाजार में आयीं, परन्तु गुणात्म साहित्य के लेखन में अपना नाम रोशन करने वाले आज के लेखकों में सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, मनोहर वर्मा, डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, व्यथित हृदय, विराज, शिवमूर्ति सिंह, योगराज थानी, मनहर चौहान, डॉ० मस्तराम कपूर, सुदर्शन, रमेश वर्मा, हिमांशु श्रीवास्तव, जयप्रकाश भारती, कन्हैलाल नन्दन, स्वदेश कुमार, उमाशंकर, विमला लूथरा, कमल शुक्ल, सरस्वती कुमार दीपक, बाल स्वरूप राही, राबिन शा पुष्प, गोविन्द सिंह, सत्यप्रकाश अग्रवाल, केशवदेव इत्यादि ने कहानी, उपन्यास एवं नाटकों के क्षेत्र में पर्याप्त यश अर्जित किया है।

हिन्दी में बच्चों के लिए असंख्य पत्रिकाएँ निकलीं, वानर बाल सखा जैसी कुछ अच्छी पत्रिकाएँ काल कवलित हो गयीं। पर आज जो पत्रिकाएँ विशेष रूप से बच्चों में लोकप्रिय हैं, वे हैं—बाल भारती, नन्दन, पराग, चन्दा मामा, चंपक, बालक।

उर्दू :

उर्दू में अन्य भाषाओं की तुलना में बाल साहित्य अल्प मात्रा में उपलब्ध है; किन्तु जो भी रचनाएँ आयीं वे गुण की दृष्टि से उत्तम कही जा सकती हैं।

सर्वप्रथम डॉ० जाकिर हुसैन साहब ने ही बच्चों के वास्ते प्रेरणादायक कहानियाँ लिखकर इस विधा का श्रीगणेश किया। उनकी प्राय: सारी कहानी देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। 'अब्बूखाँ की बकरी और चौदह और कहानियाँ' इसका सुन्दर उदाहरण है। हुसैन साहब अंग्रेजी नाटकों के आधार पर बच्चों के लिए नाटक भी रचे जो बच्चों के द्वारा खेले भी गये।

अन्य बाल साहित्यकारों में जनाब मुहम्मद शफीउद्दीन का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनका 'गाँव सुधार गीत' विशेष लोकप्रिय है और इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक गये हैं।

उर्दू के ख्यातनामा लेखक किशनचन्दर ने बच्चों के वास्ते चिड़ियों की 'अलिफ लैला' और 'उल्टा दरख्त' नाम से दो सुन्दर पुस्तकें लिखीं।

उर्दू की अन्य मशहूर किताबों में सालिब आबिद हुसैन के नाटक, अबरार मुहसन की 'डाकू की गिरफ्तारी', सैयद बशीर हुसैन कृत 'दुनिया के बसने वालो' ज्यादा चाव से पढ़ी जाने वाली हैं।

मलयालम :

मलयालम भाषा में प्रारम्भ से ही बाल साहित्य के उन्नयन की दिशा में अग्र-श्रेणी के कवियों तथा साहित्यकारों का योगदान रहा है। मलयालम के महाकवि आशान उल्लूर, वल्लतोल आदि ने इस विधा का सूत्रपात किया तो महाकवि जी० शंकर कुरूप जैसे महान कलाकारों ने इस विधा को सर्वगुणसम्पन्न बनाया।

अन्य विशिष्ट साहित्यकारों में सर्वश्री सेतुनाथ, गोपाल कृष्णन, टी० वी० जोण, परमेश्वरन, वेल्लायण अर्जुनन आदि तरुण पीढ़ी के कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा परिपुष्ट बनाया।

मलयालम बाल साहित्य की विविध विधाओं को समुज्ज्वल बनानेवाले श्रेष्ठ रचयिताओं में सर्वश्री मात्यु एम० कुलवेलु, सुकुमारन, रामकृष्ण नायर, ओ० पी० नम्बूदरीपादए, ए० पी० तानु, अनन्तु वगैरह का योगदान प्रशंसनीय है।

केरल की साहित्यिक संस्थाओं तथा प्रकाशकों ने भी बाल साहित्य के लेखन व प्रकाशन में विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। नेशनल बुक स्टाल, केरल साहित्य अकादमी के द्वारा भी महत्वपूर्ण बाल साहित्य प्रकाश में आया है। असंख्य बाल साहित्यकार अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए भारत

सरकार, प्रान्तीय सरकार, अकादमी तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए हैं।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य का सृजन पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। खासकर अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के सन्दर्भ में समस्त भारतीय भाषाओं के लेखकों ने बाल साहित्य के सृजन के प्रति अपने दायित्व का अनुभव किया है। अतः हम यह आशा कर सकते हैं कि भारतीय बाल साहित्य का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

१४

अनुवाद की समस्याएँ : तेलुगु से हिन्दी

अनुवाद शब्द विभिन्न नामों से अभिहित होता है; जैसे—भाषांतर, रूपांतर, उल्था, तर्ज़ुमा, अनुकृति, अनुसरण इत्यादि। एक भाषा से दूसरी भाषा में मात्र शब्दों एवं वाक्यों का रूपांतर अनुवाद नहीं कहलाता। मूल लेखक की सूक्ष्म अनुभूतियों, संवेदनशीलताओं, भावों तथा विचारों के साथ तादात्म्य स्थापित कर उसके हृदयगत सौन्दर्य का सजीव चित्रण जीवन्त भाषा में उतारना होता है। गहराई के साथ विचार करने पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक मौलिक रचना अनुवाद होती है। क्योंकि सर्जनात्मक साहित्य अनुभूतियों की तीव्रता के कारण निर्मित होता है, जबकि सृजन का रूप धारण करने के लिए अनुभूतियों को भाषा का कलेवर ओढ़ना पड़ता है।

अनुवाद एक कला है :

किसी भाषा में रचित किसी दूसरी भाषा में रूपान्तर करते समय मूल भाषा के सौन्दर्य की रक्षा करनी होती है। इस प्रयत्न में अनुवादक को मूल लेखक के परिवेश, दृष्टिकोण तथा उसके देश, काल और स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

जैसे चित्र लेखन प्रकृति की अनुकृति या प्रतिरूप होता है, वैसे ही अनुवाद मूल रचना की प्रतिकृति होता है। इसका तात्पर्य हुआ कि मूल रचना का समस्त सौन्दर्य, शोभा, वैभव, उद्वेग, रस, शैली, भाव-विलास तथा शब्द-विन्यास अनुवाद में भी दर्शित और प्रतिबिम्बित हों। जिस प्रकार चित्रकार एक कलाकार होता है और चित्र-लेखन एक कला है, उसी प्रकार अनुवाद भी एक कला है जो मूल रचना की अनुकृति होता है। जैसे निसर्ग सहज ही सौन्दर्य का पुंजीभूत होता है और चित्रकार उसके रमणीय दृश्यों को अपनी कला के माध्यम से सही रूप में उतारने का प्रयास करता है। वह इस प्रयास में अपनी प्रतिभा जितनी मात्रा में प्रदर्शित कर पाता है उतनी ही मात्रा में

उसकी कृति शोभा से युक्त होती है । कुछ सन्दर्भों में मूल से भी कहीं ज्यादा उसकी अनुकृति रमणीय बन पड़ती है । इसी में कला की सार्थकता निहित है । फोटोग्राफ तो मूल का प्रतिरूप या प्रतिबिंब होता है, पर चित्र अनुभूतिजन्य होता है । इसमें भाषाओं तथा कल्पनाओं का सम्मिश्रण लक्षित होता है ।

इसी प्रकार अनुवाद किसी सर्जनात्मक कृति का फोटोग्राफ या प्रतिबिंब नहीं होता । वह कला से युक्त होता है । भाषा केवल कलेवर होता है, जबकि अनुभूतियाँ उस कला की आत्मा । इसका अर्थ यह हुआ कि किसी कृति की भाषारूपी बाह्य आवरण को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं है अपितु उसके आत्मगत सौन्दर्य को आकर्षक एवं सरस शैली में प्रतिबिंबित करना उतना ही आवश्यक है ।

गणतन्त्र भारत में हिन्दी सांविधानिक समर्थन के साथ राजभाषा, सम्पर्क भाषा तथा राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है । ऐसी स्थिति में हिन्दी को सक्षम एवं समृद्ध बनाने का दायित्व देश के समस्त साहित्यकारों पर आ पड़ा है । यह तभी सम्भव है जबकि भारत की समस्त क्षेत्रीय भाषाओं में रचित वाङ्मय को अनुवाद के माध्यम से हिन्दी में उपलब्ध करा सकें ।

वैसे तो सम्पूर्ण भारत का 'साहित्य' एक है और इस देश का 'सांस्कृतिक स्वर' भी प्रायः एक ही रहा है । प्रारम्भ में संस्कृत के माध्यम से हमारी संस्कृति एवं साहित्य मुखरित हुआ है । साथ ही भारत की प्रायः समस्त क्षेत्रीय भाषाओं का सम्बन्ध संस्कृत के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में रहा है । आज हिन्दी को उसका स्थान ग्रहण करना है ।

किसी भाषा में रचित कृति का दूसरी भाषा में रूपान्तर करते समय अनुवादक को मूल भाषा के सौन्दर्य की रक्षा करनी होती है । इस प्रयत्न में रूपान्तरकार को मूल लेखक के दृष्टिकोण, परिवेश, देश-काल व स्थिति का यथार्थ ज्ञान आवश्यक हो जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि जैसे चित्रकार एक कलाकार होता है, और चित्र बनाना एक कला है, उसी प्रकार अनुवाद भी एक कला है । क्योंकि चित्रांकन प्रकृति की अनुकृति या प्रतिरूप होता है । वैसे ही अनुवाद मूल रचना की प्रतिकृति होता है । निसर्ग के सौन्दर्य को चित्रकार अपनी प्रतिभा के बल पर जितनी मात्रा में अपनी कृति में उतर पाता है, उतनी ही अधिक मात्रा में उनका चित्र सफल होता है । कुछ सन्दर्भों के मूल से कहीं ज्यादा उसकी अनुकृति वैभवपूर्ण हो जाती है, इसी

में कला की सार्थकता निहित होती है। इसी प्रकार अनुवाद किसी सर्जनात्मक कृति, फोटोग्राफ या प्रतिबिंब नहीं होता, वह कला से युक्त होता है। अतः इसका यह अर्थ हुआ कि किसी कृति का भाषारूपी बाह्य आवरण कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं होता अपितु उसके आत्मगत सौन्दर्य को सही अर्थों में प्रतिबिंबित करना आवश्यक होता है।

हिन्दी और तेलुगु दो विभिन्न परिवारों की भाषाएँ हैं; अतः उनकी प्रकृति, शब्द-भण्डार, शैली, वाक्यरचना, मुहावरे, कहावतें, छंद, अलंकार इत्यादि की दृष्टि से भिन्न है। हिन्दी व्यंजनांत भाषा है जबकि तेलुगु स्वरांत भाषा है।

चल, पढ़, देख, सुन तेलुगु में नडुवु, चदुवु, चूडु, विनु होते हैं, अर्थात् प्रत्येक शब्द स्वर के साथ अन्त होता है।

शब्द-भण्डार की दृष्टि से दोनों भाषाओं में तत्सम, तद्भव, देशज व विदेशी शब्द हैं। फिर भी प्रयोग की दृष्टि से इन भाषाओं में भिन्नता है। उदाहरण के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग तेलुगु में ह्रस्व रूप में होता है जबकि हिन्दी में दीर्घ रूप में; जैसे—

तेलुगु	**हिन्दी**	**तेलुगु**	**हिन्दी**
सभॅ	सभा	कृपॅ	कृपा
मायॅ	माया	ममतॅ	ममता
करुणॅ	करुणा	सीतॅ	सीता
दयॅ	दया	जमुनॅ	जमुना

अनुवाद में रूपान्तरकार को ये परिवर्तन करने पड़ेंगे।

तेलुगु भाषा ने तत्सम शब्दों के साथ अपने प्रत्यय जोड़कर उन्हें अपनी भाषा के शब्द बनाये हैं; जैसे—स्नेह—स्नेहमु, चित्र—चित्रमु, वृक्ष—वृक्षमु, ग्राम—ग्राममु, विष्णु—विष्णुवु, कृष्ण—कृष्णुडु, महन्त—महन्तु, वायु—वायुवु, पवन—पवनमु, समीर—समीरमु। तेलुगु की प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय हैं—डु, मु, वु, लु। इन प्रत्ययों को तत्सम शब्दों के साथ जोड़कर तेलुगु ने उन शब्दों को अपना बनाये—राम—रामुडु, वन—वरमु, मधु—मधुवु। 'लु' प्रत्यय विशेषतः बहुवचन में प्रयुक्त होता है; जैसे—वनमुलु, सभलु, महलुलु, भवनमुलु आदि।

इसी प्रकार तेलुगु वर्णमाला में देवनागरी वर्णमाला की अपेक्षा कुछ वर्णों की अधिकता है; अतः हिन्दी में उनका प्रयोग करना पड़े तो कुछ विशेष चिह्नों को काम में लाना पड़ेगा। हिन्दी में ऋ मात्र है जबकि तेलुगु में इसका

दीर्घ रूप भी है। इसी प्रकार जहाँ हिन्दी में ए और ऐ है वहाँ तेलुगु में ए, ए̄, ऐ हैं। इसी भाँति ओ, ओ̄, औ हैं।

उपर्युक्त वर्ण वाले नामों या प्रदेशों के नामों को हिन्दी में लिखना पड़े तो विशेष रूप से उन वर्णों के उच्चारण को ध्वनित करने के लिए विशेष चिह्नों में अंकित करना पड़ता है।

इसी प्रकार कतिपय तत्सम शब्द तेलुगु में हिन्दी से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—

हिन्दी	**हिन्दी में अर्थ**	**तेलुगु में अर्थ**
उपन्यास	नावेल	भाषण
प्रपंच	धोखा	विश्व, दुनिया
आग्रह	अनुरोध	क्रोध
सहवास	संसर्ग	मैत्री, दोस्ती
संगति	साथ	समाचार
बंधु	भाई	रिश्तेदार
विधि	कानून	किस्मत
विज्ञान	साइंस	ज्ञान, सम्पदा
अभिमान	अहंकार, गर्व	प्रेम, आदर, अनुराग

अरबी, फारसी तथा कतिपय हिन्दी के शब्द भी तेलुगु में भिन्न रूपों में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—नमाज़, जिन्स जिनुसु, सरनाम—चिरुनामा, मरहम—मलामु, बुर्ज—बुरुजु, लिंग संबंधी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी में प्रायः कुछ पर्याय शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों ही हैं—

पु०	**स्त्री**	**पु०**	**स्त्री**
ग्रन्थ	पुस्तक	पवन, समीर	हवा, वायु
चरण, पैर	टाँग	वक्ष	छाती
बालू	रेत	जहाज	नौका
उरु	जाँघ	चित्र	तस्वीर
संसार, विश्व	दुनिया	वातायन झरोखा	खिड़की
विघ्न	बाधा	नयन, नेत्र	आँख

अप्राणिवाचक शब्दों के लिंग-निर्णय में अन्य हिन्दीतर भाषा-भाषियों की भाँति तेलुगु से हिन्दी में अनुवाद करने वाले भी कभी-कभी अटक जाते हैं, जैसे— फल, फूल, अंकुर पुल्लिग हैं, पर लता, बेल स्त्रीलिंग। शरीर के अंगों में दाढ़ी, मूँछें, नाक, आँख स्त्रीलिंग हैं, पर हाथ, पैर, सिर, माथा, कान, मुँह पुल्लिग हैं। इस प्रकार प्रत्येक शब्द का लिंग स्मरण रखना कठिन होता है।

इसी प्रकार तेलुगु से अनुवाद करते समय संज्ञा, विशेषण आदि शब्दों के लिंग-निर्णय में भी रुक जाना पड़ता है। कपट, धोखा, दगा पुल्लिग हैं पर प्रवंचना स्त्रीलिंग है। इस प्रकार के दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते हैं। पुरुष-बोधक मूँछें स्त्रीलिंग हैं, किन्तु स्तन पुल्लिग है। पलंग पुल्लिग पर चारपाई-खाट स्त्रीलिंग हैं।

व्याकरण सम्बन्धी कुछ कठिनाइयाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रत्यय व कारक-चिह्नों के प्रयोग में भी लिंग रुकावटें खड़ी करता है—कर्म के अनुसार क्रिया रूप में परिवर्तन हो जाना हिन्दी व्याकरण की विलक्षणता है, जो द्रविण भाषाओं में नहीं देखी जाती है। नमूने के लिए—

राम ने रोटी खायी—राम ने दस रोटियाँ खायी।

सीता ने एक फल खाया—सीता ने दस फल खाये।

सीता ने एक रोटी को खाया —सीता ने दस रोटियों को खाया।

तेलुगु भाषा में कर्म के कारण क्रिया रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए तेलुगु भाषा अनुवादक को हिन्दी में अनुवाद करते समय कठिनाई होती है।

वाक्य-रचना में भी हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के बीच पर्याप्त अन्तर पाया जाता है; जैसे—तेलुगु—गोपालुडु बिडिक बेल्लुताननि चेप्पेनु (गोपाल ने स्कूल जाने की बात कही)।

हिन्दी—गोपाल ने कहा कि वह स्कूल जायेगा।

हिन्दी की वाक्य-रचना का गठन यहाँ पर अंग्रेजी के ढंग पर है; जैसे—Gopal said that he will go to school.

तेलुगु—रमेश मंचिवाडनि अंता चेपुतुन्नाक (रमेश को सब अच्छा लड़का बताते हैं)।

हिन्दी—सब लोग कहते हैं कि रमेश अच्छा लड़का है।

तेलुगु—वाडु वस्ताननि चेप्पेडु (वह आऊँगा कहकर बोला)

हिन्दी—उसने कहा कि वह जायेगा।

इसी प्रकार मुहावरों व लोकोक्तियों का अनुवाद करते समय भी अनुवादक को बड़ी माथापच्ची करनी पड़ती है। वास्तव में ये मुहावरे व लोकोक्तियाँ ही किसी भाषा के प्राण होते हैं। भाषा की सारी शोभा, सौन्दर्य व सम्पन्नता बहुत कुछ इन्हीं पर निर्भर करती है। अनेक भाव, गुणों व कार्यों का परिचय इनके आधार पर सहज, सरल तथा मधुर शैली में दिया जाता है जो पाठक तथा श्रोता पर गहरा प्रभाव डालते हैं। किसी भाषा की श्रेष्ठता, गुणवत्ता एवं अर्थवत्ता का निर्णय भी इन्हीं के आधार पर किया जा सकता है।

जो भाषा जितनी समर्थ, लचीली और भावबोधक होती है, उतनी ही मात्रा में उसकी अभिव्यक्ति की पद्धति गहन, तीव्र, सक्षम तथा श्रेष्ठ होती है। अतः अनुवाद में यदि सही अर्थबोधक मुहावरों व कहावतों का प्रयोग न करें तो उसका भाव कृत्रिम, फीका, नीरस तथा कुछ-का-कुछ हो जाता है। भाषा की सम्पदा व भाव वैभव के ये ही परिचायक हैं; अतः इनके अनुवाद में बड़ी सतर्कता बरतनी पड़ती है।

भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक रही है, एक रही है; किन्तु प्रान्तीय विशेषताओं के कारण उसमें थोड़ी-बहुत भिन्नता दर्शित होती है। यही बात भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में भी सटीक बैठती है। अधिकांश मुहावरों व कहावतों के समानार्थी रूप हिन्दी व तेलुगु में पाये जाते हैं, पर साथ ही अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनमें ठेठ तेलुगु मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग पाया जाता है। ऐसे सन्दर्भों में हिन्दी में समानार्थी मुहावरें नहीं मिलते; अतः या तो मूल भाव को व्याख्या से समझाना पड़ता है या पाद-टिप्पणी का सहारा लेना पड़ता है अथवा हिन्दी में पर्याय मुहावरे आदि गढ़ने पड़ते हैं।

कुछ मुहावरें ऐसे होते हैं जिनका थोड़े से हेर-फेर के साथ अनुवाद सम्भव है; जैसे—

तेलुगु	**भाव**	**हिन्दी का अर्थ**
गुणपाठक	(गुण-सबक)	सबक सिखाना
कनु विप्पु	(आँखें खुलीं)	ज्ञानोदय हुआ
तोडु दोंगलु	(साथी चोर)	चोर-चोर मौसेरे भाई
एँदुरीत	(प्रवाह के विपरीत तैरना)	विपरीत परिस्थितियों का सामना करना

कुछ ऐसे मुहावरे और कहावतें हैं जिनका अर्थ थोड़ा बदल जाता है। फिर भी लगभग उसी अर्थ को व्यंजित कर सकता है। किन्तु तेलुगु के प्रयोगों में उनकी अपनी खासियत होती है; जैसे—

तेलुगु	भाव	हिन्दी
कालिकि बुद्धि चेप्पुट	(पैर को अकल सिखाना)	बेतहाशा दौड़ना (भाग खड़ा होना)
पेरू गोप्प ऊरू दिब्ब	(नाम का बड़ा गाँव टीला)	नाम बड़े दर्शन थोड़े
इंटि पेरू कस्तूरि वारू इंटिलो गब्बि-लाल कंपु	(वंश का नाम कस्तूरीवाले) (पर घर में चमगादड़ों की बदबू)	(ऊँची दुकान फीका पकवान)
तल प्राणमु तोककु वच्ट	(सर का प्राण पूँछ में आना)	भारी मुसीबत में पड़ना

पर कुछ ऐसे प्रयोग भी होते हैं जिनका अनुवाद संभव नहीं; जैसे—"इंटिकि रानी कथ चेपुता" अर्थात् "घर चले आओ, तुम्हारी कहानी सुनाऊँगा"। मतलब—घर चलो, तब तुम्हें उचित दण्ड दूँगा। इसी प्रकार दुष्ट व धूर्त व्यक्ति को तेलुगु में 'देवांतकुडु' (देवता का अन्त करने वाला) कहा जाता है।

कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं जिनका अर्थ हिन्दी में विरोध ध्वनित करता है; जैसे—तेलुगु में—"पच्चि मोस गाडु" (कच्चा धोखेबाज) जबकि हिन्दी में "पक्का धोखेबाज" कहा जाता है। इसमें तेलुगु का "कच्चा" विशेषण हिन्दी में विपरीत अर्थ में "पक्का" हो गया है। तेलुगु में घनिष्ठ मित्र को "प्राण मित्र" तथा बचपन के दोस्त को "बाल्य स्नेहितुडु" कहा जाता है। अनुवाद करने पर दूसरे के लिए "लंगोटिया यार" सूझे तो अनुवाद में बात नहीं आ पाती।

लोकोक्तियों के प्रयोग में तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। हम यहाँ पर तेलुगु की कुछ विशिष्ट लोकोक्तियों को प्रस्तुत कर रहे हैं। उनका भाव हिन्दी में लगभग उसी रूप में है—

१. चल्लुकु वच्चि मुंयदाचुटेंदुलकु ?
   (छाछ लेने को आया)
२. प्रोद्दुने वच्चिन वान प्रोद्दुपोयि वच्चिन चुट्टं पोयेदि लेदु।
   (सुबह की बरखा और रात के पाहुन जल्दी नहीं जाते।)
३. पाड़ि लेनि इल्लु पाताल लोकं।
   (बिन गोरस घर नरक समान)
४. रोहिणी कार्ते लो रोल्लु बद्दलवुतायि।
   (राहिणिया पाख में ओखली भी फट जाती हैं।)

१. ये उदाहरण भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'नाटककार वेंकटेश्वर राव' से लिये गये हैं; जिसका अनुवाद इन पंक्तियों के लेखक ने किया है।

५. लाभं लेनि सैटिट वरदनु पोडंट ।
(बिना लाभ देखे बनिया भरी गंगा में भी पाँव नहीं देता)

६. कालु जारिते तीसुको गलमु कानि नोरू जारिते तीसुको गलमा ?
(पैर के फिसलने पर निकाल सकते हैं, पर ज़ुबान के फिसलने पर वापस क्या ले सकते हैं ?)
समानार्थी : बात का चूका आदमी और डाल का चूका बंदर ।

७. चेट्टै वंगनिदि म्राने वंगुना ?
(पौधा रहते न झुका, पेड़ होकर झुकेगा ?)

८. नडिमंत्रपु सिरि नराल मौद कुरुपु ।
(कच्ची दौलत रीढ़ का फोड़ा; अर्थात् बीच में (जन्म-मृत्यु के बीच)
(प्राप्त संपदा नसों पर उगे फोड़े के समान है ।)

९. मंचि मनिषिकोक माट मंचि गोड्डुकोक देब्ब ।
(अच्छे आदमी के लिए बात और ढोर के लिए लात)

उपर्युक्त कठिनाइयों के बावजूद तेलुगु में संस्कृत से सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत हुए हैं ।

तेलुगु से हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनियाँ, नाटक, इतिहास इत्यादि के रूपांतर विभिन्न प्रकाशनों के साथ साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, राष्ट्रभाषा परिषद् तथा अन्यान्य संस्थाओं के द्वारा प्रकाशित हुए हैं, जिनका अध्ययन करने पर हमें यही प्रतीत होता है कि तेलुगु से हिन्दी में रूपांतर काफी सुगमता एवं सफलतापूर्वक संभव है । फिर भी भाषायी भिन्नता के कारण सफल अनुवाद प्रस्तुत करने में कतिपय व्याव-हारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

इस संदर्भ में हम यहाँ पर तेलुगु के कतिपय लेखकों के कथा-साहित्य एवं नाटकों के रूपांतर में उपस्थित होनेवाली समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराना चाहेंगे ।

अनुवाद के तहत भाषा-शैली, वाक्य-रचना, शिल्प आदि की समुचित जानकारी के बिना मौलिक रचना का अनुवाद संभव नहीं है । निबन्ध, इतिहास, समीक्षा इत्यादि का अनुवाद भाषा-ज्ञान एवं पांडित्य के बल पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है, लेकिन कविता, कथा-साहित्य और नाटक के संदर्भ में यह बात नहीं है । उदाहरण के लिए विश्वनाथ सत्यनारायण की शैली पंडिताऊ, क्लिष्ट, दुरूह तथा लम्बे समासों से युक्त है । उनकी भाषा की परिनिष्ठित तथा तत्सम शब्दों से पूर्ण होता है । उनके वाक्य इतने लम्बे

होते हैं कि उनको उसी रूप में हिन्दी में उतारना कठिन ही नहीं, असंभव-सा लगता है। उन वाक्यों को तोड़कर उनके भीतर बिखरे भावों को एक गोताखोर की भाँति एकत्रित करना होता है।

श्री कुटुंबराव की भाषा व शैली सरल, सुबोध है। वाक्य इतने छोटे तथा सुगठित होते हैं कि उनमें एक भी शब्द व्यर्थ का नहीं होता। उसमें तेलुगुपन इतना अधिक है कि हिन्दी के जन-प्रचलित रूप की जानकारी के बिना अनुवाद असंभव है। उनकी कतिपय कहानियाँ सामाजिक संदर्भ को प्रस्तुत करने वाली हैं। उदाहरण के लिए "गंजिकेन्द्रम" रायल सीमा के अकाल का सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है। यदि किसी प्रदेश में ऐसा भयंकर अकाल न पड़ा हो तो उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी ही बातें अन्य कहानी तथा उपन्यासकारों, नाटककारों एवं कवियों की कृतियों के अनुवाद के विषय में भी कही जा सकती है। अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हमें निम्नलिखित तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रसंग में पहला प्रश्न यह है कि आज उत्तम अनूदित साहित्य का अभाव क्यों है? इस प्रसंग में इसका उत्तर यों दिया जा सकता है कि स्वतंत्र या मौलिक लेखन करने वाले लेखक सर्जनात्मक साहित्य के सृजन में ज्यादा अभिरुचि दिखाते हैं, अनुवाद में नहीं। दूसरी बात यह है कि अनुवाद के लिए मौलिक लेखन की अपेक्षा कम पारिश्रमिक दिया जाता है। तीसरी बात है कि द्विभाषी साहित्यकारों की संख्या कम है। इसीलिए मूल से अनुवाद कराने की अपेक्षा अनुवाद से अनुवाद कराये जा रहे हैं। इसके कारण भी अच्छे अनुवाद हमारे सामने आ पा रहे हैं। चौथी बात यह है कि अनूदित ग्रन्थों की बिक्री कम होती है। पाँचवीं बात यह है कि अनुवादों के लिए चयन करते समय किसी भाषा की उत्तम कृति का चुनाव भी सही ढंग से नहीं हो रहा है।

उपर्युक्त विषमताओं के बावजूद इनके अपवाद भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए तेलुगु भाषा की विविध विधाओं के जनक श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने सर्वप्रथम अंग्रेजी के विख्यात लेखक श्री गोल्डस्मिथ द्वारा विरचित "विकार आफ़ वेकफील्ड" उपन्यास का तेलुगु में "राजशेखर चरित्र" नाम से स्वतंत्र अनुवाद किया। इस रूपांतर में अनुवादक ने संपूर्ण वातावरण का आन्ध्रीकरण किया, पात्रों व प्रदेशों के नाम बदल डाले; फलतः वह एक मौलिक उपन्यास के रूप में लोकप्रिय हुआ। उस उपन्यास को पढ़कर एक अंगरेज महिला लेखिका मुग्ध हुई और उन्होंने इस तेलुगु उपन्यास का रूपांतर पुनः अंग्रेजी में "फार्चून्स व्हील" (भाग्य चक्र) नाम से प्रकाशित किया, जिसकी "लन्दन

टाइम्स'' तथा मद्रास के सर्वाधिक लोकप्रिय अंग्रेजी दैनिक ''हिन्दू'' ने बड़ी प्रशंसा की और उसे एक अभूतपूर्व उपन्यास बताया ।

अतः हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है । अनुवाद को रोचक, सरल तथा मौलिक तत्वों से सशक्त एवं सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए, तब जाकर अनुवाद भी मौलिक ग्रन्थों की भाँति पाठकों द्वारा समादृत होंगे, उनकी बिक्री बढ़ेगी तथा विश्व का संपूर्ण साहित्य समस्त भाषा-भाषियों के लिए सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकेगा ।